आपने तो जानही लिया लेकिन पाठकगणोंको शंका फिर भी रहजायगी कारण कि भाषा है सायत कुछ छूटगया हो इस वास्ते सबकी संमति हुई कि मूलके साथ रहैगा तो अति उत्तम होगा इसवास्ते हमने महा[illegible] देख-कर उसमें से "शांतिपर्व मोक्षधर्म—उत्तरार्द्ध में अध्याय १४७ से १५८ तक और कुल श्लोक ६१० में श्रीशुक-देवजीका पूरा दृष्टान्त लिखा है जोकि राजा युधिष्ठिरजीने किसी [illegible] भीष्मजी से पूछाथा कि श्रीशुकदेवजी का पूरा वृत्तांत प्रकाशित कीजिये कि कैसे हुये हैं—

(४) दूसरा योगवाशिष्ठ [illegible] में पहिले अध्याय में श्री[illegible] से प्रश्न किया है कि श्रीशुकदेवजी कैसे [illegible] हुये हैं तो आप कहिये, सो [illegible] ने [illegible] रामचन्द्रजीको सुनाया है-

(५) इनका तो हमने [illegible] दिया है और एक ग्रंथ से पूरा श्रीशुकदेवजीका जीवन चरित्र यथा पूर्वक वर्णन किया है—

(६) हे पाठकगणो! यदि [illegible] हो-गया हो तो क्षमा करना क्योंकि—

[illegible] वापि भवत्येवप्रमादतः ।
हसन्तिदुर्जनास्तत्र समादध तिसज्जनाः ॥ १ ॥

इत्यलम् ॥

[illegible] ॥
श्रीनिजित [illegible]

इति सूचीपत्रं समाप्तम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशुकदेवजीका जीवनचरित्र ॥

मङ्गलाचरणम् ॥

यंब्रह्मवेदान्तविदोवदन्तिपरंप्रधानंपुरुषंतथान्ये ॥
विश्वोद्गतेःकारणमीश्वरं वा तस्मैनमोविघ्नविनाशनाय १
नित्यामनन्तांप्रकृतिंपुराणींचिदीश्वरींसर्वजगन्निवासाम्।
शिवार्द्धदेहामगुणांगुणाश्रयांवर्णार्थरूपांप्रणमामिदेवीम्२
विवेकिनांविवेकाय विमर्शायविमर्शिनाम् ॥
प्रकाशानांप्रकाशाय ज्ञानिनांज्ञानिरूपिणे ॥ ३ ॥
पुरस्तात्पार्श्वयोःपृष्ठेनमस्कुर्य्यामुपर्यधः ॥
सदाअचिन्त्यरूपेण विधेहिभवदासनम् ॥ ४ ॥

मैं भगवती का आराधन कर रहा था सो एकदिन पूजान्त समय में मेरे को श्रीशुकदेवजी का स्मरणहुआ उससमय हमने यह विचार किया कि देखो जबसे होश हुआ आजतक मैं यही सुनता चलाआता हूं कि शुकदेवजी अपने माता के पेटही में सब विद्या को पढ़चुके थे यह मान श्रीमद्भागवत की तरफ़

विचार किया तो उस में भी हमको बहुतही शङ्काहुई और बहुतसे लोग कहते हैं कि श्रीशुकदेवजी नार बिवारलपेटे हुये पैदाहुये भगे पीछे व्यासजी भी दौड़े श्रीशुकदेवजी के पीछे यह बात सुन कर हमको अति सन्देह हुआ और हमने कहा यह बात असंभवित है आजतक ऐसी बात कहींपर पाई नहीं गई और ब्रह्म सृष्टि में भी नहीं पाई जाती और जो २ अवतार हुये उनमें कुछ कारण भी था और श्रीशुकदेव जी कारण सृष्टिमें न आया क्योंकि विना कारण कोई वस्तु पैदा नहीं होसक्ती देखो श्रीस्कन्द जी का जन्म किसतरह से हुआ तिसकाभी कारण मालूमहोता है इसी तरह से अनेक सृष्टि हुई उसमें कोई शङ्का नहीं पाईगई परन्तु श्रीशुकदेवजी में बड़ीभारी शङ्का उत्पन्न हुई कि अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि साढ़ेपांचहज़ार वर्ष कलियुग बीतगया और श्रीशुकदेवजीका कारण न बताया किसीको देखो पण्डित लोग बड़े विद्वान् और भागवत के मूर्त्तिही होरहे हैं सो उनके भी मुख से कभी शुकदेव का कारण किसी सज्जन लोगों ने न पाया अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि " उदरनिमित्तंबहु कृतवेषा " इस से यही मालूमहोता है कि अपने उदर (पेट) के वास्ते वेष बनाकर अपना निर्वाह करते हैं इसी से यही प्रतीत हुआ और देखो इतने बड़े महर्षि वेदव्यास जी तिनके पुत्र के नाम से भागवत बांच बांच कर अपना निर्वाह करते हैं और यह न शोचा कि ऐसे महात्मा श्रीशुकदेवजी वेदव्यासके पुत्र तिनका कारण न जाना न ख्यालकिया व न विचारा न ढूंढ़ा अहोहो ! बड़े आश्चर्य की बातहै अच्छा खैर हम कुछनहीं कहसके कि आप लोगों से छोटा हूँ सो सब सज्जन लोग मेराअपराध क्षमा करें ॥

फिर हम संतोष करिकै सावधान हुये लेकिन वासना लगी ही रही कुछ तन्द्रा हमको आगई उस तन्द्रा में क्या देखते हैं एक कन्या कहती है कि तू सोच क्या करता है देख शुकदेवजी

का हाल सब लिखाहै ग्रन्थों में किसीको नहीं देख पड़ता महा माया मोहसे फँसे हैं इतना कहतेही आंख खुली देखते हैं कि कोई नहीं यह विचारकर हमने फिर माताजीकी प्रार्थनाकर ग्रन्थोंका देखना शुरूअ किया सो सब हाल श्रीशुकदेवजीका यथोचित मिलगया सो मैं प्रकाश करताहूं ॥

ऋषयऊचुः ॥

सौम्यव्यासस्यभार्यायां कस्यांजातःसुतःशुकः ॥
कथंवाकीदृशोयेन पठितेयंसुसंहिता ॥ १ ॥

ऋषि बोले—कि हे सूतजी महाराज! व्यासजीकी किस स्त्री से श्रीशुकदेवजी प्रगट हुये और किसप्रकार से हुये और कैसे गुणी थे जिन्होंने यह संहिता पढ़ी ॥ १ ॥

अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथाचाऽरणिजःशुकः ॥
सन्देहोस्तिमहांस्तत्र कथयाद्यमहामते ॥ २ ॥

और आप श्रीशुकदेवजीको अरणी से उत्पन्न अयोनिज कहतेहो हे महाबुद्धिमन्! इसको आप कहिये इसमें हमको बड़ा सन्देह है ॥ २ ॥

गर्भयोगीश्रुतःपूर्वं शुकोनाममहातपाः ॥
कथंचपठितंतेन पुराणंबहुविस्तरम् ॥ ३ ॥

कि हमने महातपस्वी श्रीशुकदेवजी को पूर्व में गर्भ योगी सुनाहै और फिर उन्होंने यह बड़े विस्तारका पुराण किस तरह से पढ़ा ॥ ३ ॥

सूत उवाच ॥

पुरासरस्वतीतीरे व्यासःसत्यवतीसुतः ॥
आश्रमेकलविंकौतु दृष्ट्वाविस्मयमागतः ॥ ४ ॥

सूतजी बोले कि, एक समय श्रीवेदव्यासजी सारस्वती नदी

के किनारे अपने आश्रम में बैठेहुये दो चटक पक्षियों को देखकर परम विस्मित हुये ॥ ४ ॥

जातमात्रंशिशुंनीडे मुक्तमण्डान्मनोहरम् ॥
ताम्रास्यंशुभसर्वाङ्गं पिच्छाङ्कुर विवर्जितम् ॥ ५ ॥

कि उत्पन्न होतेही अपने शिशुको जो अण्डे से प्रगट मनोहर ताम्रमुख सब अंगसे मनोहर पुच्छ और रोमसे हीन था घोंसले में छोड़कर ॥ ५ ॥

तौतुभक्ष्यार्थमत्यन्तं रतौश्रमपरायणौ ॥
शिशोश्चंचूपुटेभक्ष्यं क्षिपन्तौचपुनःपुनः ॥ ६ ॥

रतिके श्रमसे परायणहुये वे दोनों भक्ष्य लाकर अपनी चोंच से बच्चोंकी चोंचमें बारम्बार अन्न देरहे हैं ॥ ६ ॥

अङ्गैनाङ्गानिबालस्य घर्षयन्तौमुदान्वितौ ॥
चुम्बन्तौचमुखंप्रेम्णा कलविंकौशिशोःशुभम् ॥ ७ ॥

वह परम प्रसन्नहो अपने अंगसे बालकके अंग घर्षण करते वे कलविंक प्रेमसे अपने बालकका मुख चूमते थे ॥ ७ ॥

वीक्ष्यप्रेमाद्भुतंतत्र बालेचटकयोस्तदा ॥
व्यासश्चिन्तातुरःकामं मनसासमचिन्तयत् ॥ ८ ॥

उन दोनों चटकोंका बालक में अत्यन्त प्रेम देखकर चिन्तातुरहो श्रीवेदव्यासजीने अपने मनमें यथेष्ट विचार किया ॥ ८ ॥

तिरश्चामपियत्प्रेम पुत्रेसमभिलक्ष्यते ॥
किंचित्रंयन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम् ॥ ९ ॥

जब कि पक्षी आदिके प्रेम भी पुत्रों में देखाजाता है फिर सेवा फलकी इच्छावाले मनुष्यों में हो तौ क्या विचित्र है ९ ॥

किमेतौचटकौचास्य विवाहंसुखसाधनम् ॥
निरीक्ष्यसुखिनौस्यातां वृद्धावध्वामुखंशुभम् ॥ १० ॥

क्या यह दोनों चटक पक्षी इसके बिवाह सुख साधन की रचना करिकै वधूका मुख देखकर प्रसन्न होंगे ॥ १० ॥

अथवावार्धकेप्राप्ते परिचर्यांकरिष्यति ॥
पुत्रःपरमधर्मिष्ठः पुण्यार्थंकलविंकयोः ॥ ११ ॥

अथवा यह इनकी बुढ़ापे में सेवा करैगा यह कलविंकको प्रसन्नताके निमित्त परम धर्म करैगा ॥ ११ ॥

अर्जयित्वाऽथवाद्रव्यं पितरौतर्पयिष्यति ॥
अथवाप्रेतकार्याणि करिष्यतियथाविधि ॥ १२ ॥

क्या यह धन उत्पन्न करिकै अपने माता, पिता, को तृप्त करैगा अथवा विधिपूर्वक याने जिस तरह से वेदमें लिखाहै उसी तरह से प्रेतकार्य करैगा ॥ १२ ॥

अथवाकिंगयाश्राद्धं गत्वासंवितरिष्यति ॥
नीलोत्सर्गं च विधिवत्प्रकरिष्यतिबालकः ॥ १३ ॥

अथवा क्या गयामें जाकर श्राद्धको करैगा क्या यह बालक विधिपूर्वक नीलवृषभ का उत्सर्ग करैगा ॥ १३ ॥

संसारेऽत्रसमाख्यातं सुखानामुत्तमंसुखम् ॥
पुत्रगात्रपरिष्वङ्गोलालनंचविशेषतः ॥ १४ ॥

इस संसार में सुखों में उत्तम सुख यही कहाहै कि पुत्रके शरीर को स्पर्शकर प्रेमसे विशेषकर आलिंगन करना ॥ १४ ॥

अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गोनैवचनैवच ॥
पुत्रादन्यतरन्नास्ति परलोकस्यसाधनम् ॥ १५ ॥

विना पुत्रके गति नहीं होती और स्वर्ग भी नहीं है परलोक के निमित्त पुत्रसे अधिक कोई साधन नहीं है ॥ १५ ॥

मन्वादिभिःस्मृतिनिर्धर्मशास्त्रेप्रभाषितम् ॥

पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तुकथंचन ॥ १६ ॥

मनु आदि ऋषियों ने ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा है कि पुत्रसे ही स्वर्ग होता और विना पुत्र के स्वर्ग नहीं होता ॥ १६ ॥

दृश्यतेऽत्रसमक्षं तन्नानुमानेनसाध्यते ॥
पुत्रवान्मुच्यतेपापादाप्तवाक्यंचशाश्वतम् ॥ १७ ॥

यह बात तो प्रत्यक्षही है कुछ अनुमानसाधन की आवश्यकता नहीं है पुत्रवान्ही पाप से छूटजाता है यह आप्तों ने कहा है ॥ १७ ॥

आतुरोमृत्युकालेऽपि भूमिशय्यागतोनरः ॥
करोतिमनसाचिन्तां दुःखितःपुत्रवर्जितः ॥ १८ ॥

आतुर और मृत्युकालसेभी भूमिशय्या पर पड़ाहुआ मनुष्य पुत्र के विना मनमें व्याकुल हो चिन्ता करता है ॥ १८ ॥

धनंमेविपुलंगेहे पात्राणिविविधानि च ॥
मन्दिरंसुन्दरंचैतत्कोऽस्यस्वामीभविष्यति ॥ १९ ॥

धन मेरे घरमें अनेकप्रकार का है अनेक तरह के पात्र भी हैं और सुन्दर मन्दिर याने मकान भी है इनका स्वामी कौन होगा ॥ १६ ॥

मृत्युकालेमनस्तस्य दुःखेनभ्रमतेयतः ॥
अतोस्यदुर्गतिर्नूनंभ्रान्तचित्तस्यसर्वथा ॥ २० ॥

मृत्युकाल में उसका मन दुःख में भ्रमणकरता है इसकारण भ्रान्तचित्तकी सर्वथा दुर्गति होती है ॥ २० ॥

एवंचबहुधाचिन्तां कृत्वासत्यवतीसुतः ॥
निःश्वास्यबहुधाचोष्णं विमनाःसंबभूवह ॥ २१ ॥

इसप्रकार व्यास जी अनेकप्रकार की चिन्तना करके बहुत श्वास लेकर विमन होगये ॥ २१ ॥

विचार्यमनसात्यर्थं कृत्वामनसिनिश्चयम् ॥
जगाम्चतपस्तप्तुं मेरुपर्वतसन्निधौ ॥ २२ ॥

ऐसा मनमें विचार करके निश्चय किया व तप करने को सुमेरु पर्वतपर चलेगये ॥ २२ ॥

मनसाचिन्तयामास किंदेवंसमुपास्महे ॥
वरप्रदाननिपुणंवाञ्छितार्थप्रदंतथा ॥ २३ ॥

सो अपने मन में क्या विचार करने लगे कि मैं किस देवता का ध्यान करूं जो जल्दी से वरदान देकर मनोवाञ्छित पूरा करै ॥ २३ ॥

विष्णुंरुद्रंसुरेन्द्रंवाब्रह्माणंवादिवाकरम् ॥
गणेशंकार्त्तिकेयञ्च पावकंवरुणंतथा ॥ २४ ॥

अब विष्णु, रुद्र, सुरेन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्त्तिकेय, अग्नि और वरुण इनसब्बों में मैं किसकी उपासना करूं ॥ २४ ॥

एवंचिन्तयतस्तस्य नारदोमुनिसत्तमः ॥
यदृच्छयासमायातो वीणापाणिःसमाहितः ॥ २५ ॥

उनके मन में ऐसा विचार करने पर मुनिश्रेष्ठ नारदजी हाथ मैं वीणा लिये अपनी इच्छा से ही वहांपर प्राप्तहुये ॥ २५ ॥

तंदृष्ट्वापरमप्रीतो व्यासःसत्यवतीसुतः ॥
कृत्वाऽर्घ्यमासनंदत्वा प्रपच्छकुशलंमुनिम् ॥ २६ ॥

सत्यवतीके पुत्र व्यासजी नारदजी को देखि अतिपरम प्रसन्न भये अर्घ्यपाद्य दै आसन देकर मुनि से कुशल पूछते भये॥ २६॥

श्रुत्वाऽथकुशलंप्रश्नं प्रपच्छमुनिसत्तमः ॥
चिन्तातुरोऽसिकस्मात्वं द्वैपायनवदस्वमे २७ ॥

कुशल सुनकर प्रश्न नारदमुनि पूछने लगे कि हे व्यासजी !

आप किस निमित्त चिन्ता से भरे व्याकुल देख पड़तेहौ सो हम से कारण कहो ॥ २७ ॥

व्यास उवाच ॥

अपुत्रस्यगतिर्नास्तिनसुखंमानसेततः ॥
तदर्थंदुःखितश्चाहंचिन्तयामिपुनःपुनः ॥ २८ ॥

व्यासजी बोले न तो अपुत्र की गति याने पुत्रहीन मनुष्यकी गति नहीं होती और न मनमें कभी सुख होता है इसकारण से मैं दुःखी होकर बारबार चिन्ता करता हूं ॥ २८ ॥

तपसातोषयाम्यद्यकंदेवं वाञ्छितार्थदम् ॥
इतिचिन्तातुरोस्म्यद्यत्वामहंशरणंगतः ॥ २९ ॥

अब मैं अपना मनोरथ पूर्ण करनेवाले किस देवताको तप करके सन्तुष्ट करूं इस चिन्तासे व्याकुलहूँ सो आपकी शरणमें आयाहूं ॥ २९ ॥

सर्वज्ञोऽसिमहर्षेत्वं कथयाशुकृपानिधे ॥
कंदेवंशरणंयामि योमेपुत्रंप्रदास्यति ॥ ३० ॥

हे कृपानिधे महर्षे! तुम सर्वज्ञहो कहिये किस देवता की मैं शरण में जाऊं जो हमको पुत्रप्रदान करै ॥ ३० ॥

सूत उवाच ॥

इतिव्यासेनपृष्टस्तु नारदोवेदविन्मुनिः ॥
उवाचपरयाप्रीत्या कृष्णंप्रतिमहामनाः ॥ ३१ ॥

सूतजी बोले कि इसप्रकार व्यासजीके पूछने पर नारदमुनि परमप्रसन्न होकर व्यासजी से बोले ॥ ३१ ॥

नारद उवाच ॥

पाराशर्यमहाभाग यत्त्वंपृच्छसिमामिह ॥
तमेवार्थंपुरापृष्टःपित्रामेमधुसूदनः ॥ ३२ ॥

तब नारदजी वोले कि हे महाभाग, पराशरपुत्र ! जो आप हमसे पूछतेहो तो यही वार्त्ता भगवान् से हमारे पिताजीने पूछी थी सो मैं कहूंगा ॥ ३२ ॥

ध्यानस्थंतंहरिंदृष्ट्वा पि[illegible]ः ॥
पर्यपृच्छतदेवेशंश्रीनाथंजगतःपतिम् ॥३३ ॥

सो किसी समय की वातहै कि हमारे पिताजी हरिको ध्यान करते देखकर अति [illegible] में प्राप्त हुये और जगत्पति से पूंछने लगे कि ॥ ३३ ॥

कौस्तुभोद्भासितंदिव्यं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥
पीताम्बरंचतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥३४॥

और जो कौस्तुभमणि से आप उद्भासितहो दिव्य सुन्दर शंख चक्र गदा पद्म धारण किये पीताम्बर ओढ़े चतुर्बाहु श्रीवत्स से अङ्कित वक्षस्थल ॥ ३४ ॥

कारणंसर्वलोकानां देवदेवंजगद्गुरुम् ॥
वासुदेवंजगन्नाथं तप्यमानंमहत्तपः ॥ ३५ ॥

सर्वलोक के कारण देव देव जगत्प्रभु वासुदेव को महातप करतेहुये देखकरके ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

देवदेवजगन्नाथं भूतभव्यभवत्प्रभो ॥
तपश्चरसि[illegible]किं ध्यायसि जनार्दन ॥ ३६ ॥

फिर ब्रह्माजी वोले हे देव देव जगन्नाथ! तुम भूत भविष्य वर्तमान के ज्ञाताहौ हे जनार्दन ! आप क्यों तपकरतेहैं और किस का ध्यान करतेहो ॥ ३६ ॥

[illegible] ॥
[illegible] ॥ ३७ ॥

नाहंपालयितुंशक्तः संहर्तुंनापिशङ्करः ॥ ४८ ॥

उसके विना तुम किसी कर्म के करने में समर्थ नहींहो और न मैं पालन करने में और शिव संहार करने में समर्थहैं ॥४८॥

तदधीनावयंसर्वे वर्त्तामःसततंविभो ॥
प्रत्यक्षेचपरोक्षेच दृष्टांतंशृणुसुव्रत ॥ ४९ ॥

हे ब्रह्मन् ! हम सब उसी के अधीनहोकर वर्त्ततेहैं हे सुव्रत! प्रत्यक्ष और परोक्ष में दृष्टान्त तुम सुनो ॥ ४९ ॥

शेषस्वपिमिपर्यङ्के परतन्त्रोनसंशयः ॥
तदधीनःसदोत्तिष्ठे कालेकालवशंगतः ॥ ५० ॥

प्रलयकाल में परतन्त्र होकर हमको शेषशय्यापर शयन करना होता है और समय पर उसी के अधीन होकर उठना होता है ॥ ५० ॥

तपश्चरामिसततं तदधीनोऽस्म्यहंसदा ॥
कदाचित्सहलक्ष्म्या च विहरामियथासुखम् ॥५१॥

और उसीके अधीन होकर निरन्तर तपस्या करताहूं कभी लक्ष्मी के साथ यथासुख विहार करता हूं ॥ ५१ ॥

कदाचिद्दानवैःसार्द्धं संग्रामंप्रकरोम्यहम् ॥
दारुणंदेहदमनं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ५२ ॥

कभी मैं दानवों के सहित संग्राम करता हूं जो सबलोकको भयदायी दारुणदेहका क्लेशकारक होता है ॥ ५२ ॥

प्रत्यक्षंतवधर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवेपुरा ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धंमयाकृतम् ॥ ५३ ॥

हे धर्मज्ञ ! तुम्हारे देखतेही देखते एकार्णवसागर में पांचसहस्रवर्ष ५००० तक मैंने बाहुयुद्ध किया ॥ ५३ ॥

तौकर्णमलजौदुष्टौ दानवौमदगर्वितौ ॥
देवदेव्याःप्रसादेन निहतौमधुकैटभौ ॥ ५४ ॥

और हमारे कर्ण के मल से उत्पन्नहुये वे मद से गर्वितदानव देवी के प्रसादसेही मारेगये ॥ ५४ ॥

तदात्वयानकिंज्ञातं कारणन्तुपरात्परम् ॥
शक्तिरूपंमहाभाग किंपृच्छसिपुनःपुनः ॥ ५५ ॥

तब तुमने उस परात्पर के कारण को क्या नहीं जाना, हे महाभाग ! वही शक्तिका रूप था फिर तुम क्या वारंवार पूंछते हो ॥ ५५ ॥

यदिच्छापुरुषोभूत्वा विचरामिमहार्णवे ॥
कच्छपःकोलसिंहश्चवामनश्चयुगेयुगे ॥ ५६ ॥

जिसकी इच्छा से पुरुष होकर महाअर्णव में विचरण करता हूं और युग २ में कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, अवतार धारण करता हूं ॥ ५६ ॥

नमत्स्यादिभियोलोके तिर्यग्योनिषुसम्भवः ॥
नऽभवंस्वेच्छयात्राम वाराहादिषुयोनिषु ॥५७॥

तिर्यग्योनि में जन्म लेनेको कोई भी इच्छा नहीं करताहै इस से मैं स्वेच्छा से वाराह आदि योनियोंमें जन्म नहींलेताहूं ॥ ५७॥

विहायलक्ष्म्या सहसंविहारं-
कोयातिमत्स्यादिषुहीनयोनिषु ॥
शय्यांचमुक्त्वागरुडासनस्थः-
करोतियुद्धंविपुलंस्वतन्त्रः ॥ ५८ ॥

लक्ष्मी के संग विहार छोड़कर हीनयोनि मत्स्यादिका कौन शरीर धारण करेगा और शय्या को छोड़कर कौन स्वतन्त्र गरुड़ के ऊपर चढ़कर संग्राम करेगा ॥ ५८ ॥

सूतजी से ऋषि बोले कि हे सूतजी ! आप ने कहा कि, महा तेजस्वी व्यासजी ने यह सब पुराण बनाकर शुकदेव जी को पढ़ाया ॥ १ ॥

व्यासेनतुतपस्तप्त्वा कथमुत्पादितःशुकः ॥
विस्तरंब्रूहिसकलंयच्छ्रुतंकृष्णतस्त्वया ॥ २॥

व्यासजी ने तप करके शुकदेवजी को कैसे उत्पन्न किया ? जो आपने व्यासजी से सुना वह सब वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

सूत उवाच ॥

प्रवक्ष्यामिशुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥
यथोत्पन्नःशुकःसाक्षाद्योगिनांप्रवरोमुनिः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले कि सत्यवती के पुत्र व्यासजी से शुकदेव जैसे हुये वह सब मैं कहता हूं जिसप्रकार योगियों में श्रेष्ठ शुकदेवजी उत्पन्नहुये ॥ ३ ॥

मेरुशृङ्गेमहारम्येव्यासःसत्यवतीसुतः ॥
तपश्चचारसोत्युग्रं पुत्रार्थंकृतनिश्चयः ॥ ४ ॥

कोई समय में सत्यवती के पुत्र व्यासजी मनोहर सुमेरु के शृङ्ग में पुत्र के निमित्त बड़ा तप करने लगे ॥ ४ ॥

जपन्नेकाक्षरंमन्त्रं वाग्बीजंनारदाच्छ्रुतम् ॥
ध्यायन्परांमहामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः ॥ ५ ॥

और नारदजी से सुनकर वाग्बीज एकाक्षर मन्त्रका जपक-रने लगे इसप्रकार पुत्रकी इच्छा से तपोनिधि महामायाकाध्यान करने लगे ॥ ५ ॥

अग्नेर्भूमेस्तथावायोरन्तरिक्षस्यचाप्ययम् ॥
वीर्येणसम्मितःपुत्रोममभूयादितिस्मह ॥ ६ ॥

अग्नि, भूमि, वायु, अन्तरिक्ष, जल इनकी शक्तियों से सम्पन्न मेरा पुत्रहो यही मन में निश्चय किये थे ॥ ६ ॥

अतिष्ठत्सगताहारः शतसंवत्सरंप्रभुः ॥
आराधयन्महादेवं तथैवचसदाशिवाम् ॥ ७ ॥

और सौ वर्ष १०० तक व्यासजीने कुछ भी (आहार) भोजन नहीं किया शिवा (भगवती) और शिव को आराधन करते रहे ॥ ७ ॥

शक्तिःसर्वत्रपूज्येति विचार्यच पुनःपुनः ॥
अशक्तोनिन्द्यतेलोके शक्तस्तुपरिपूज्यते ॥ ८ ॥

शक्ति सर्वत्र (सबजगह) पूजनीय (पूजन करने योग्य) है ऐसा वारंवार मन में निश्चय करके कि अशक्त निन्दित होता और शक्तिमान् पूजितहोता है ॥ ८ ॥

यत्रपर्वतशृङ्गेवैकर्णिकारवनेऽद्भुते ॥
क्रीडन्तिदेवताःसर्वेमुनयश्चतपोधिकाः ॥ ९ ॥

जहां पर्वतशृङ्गपर कर्णिकारका अद्भुत वन था जहांपर देवता क्रीड़ा करते और मुनि (ऋषि) लोग अधिक तप करतेथे ९ ॥

आदित्यावसवोरुद्रा मरुतश्चाश्विनौतथा ॥
वसन्तिमुनयोयत्र येचान्येब्रह्मवित्तमाः ॥ १० ॥

आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत, अश्विनीकुमार मुनि तथा दूसरे ब्रह्मवादी जहां निवास करते थे ॥ १० ॥

तत्रहेमगिरेःशृङ्गे सङ्गीतध्वनिनादिते ॥
तपश्चचारधर्मात्मा व्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ११ ॥

उस गीतध्वनि से शब्दायमान सुवर्णगिरिके शृङ्गमें धर्मात्मा सत्यवती के पुत्र व्यासजी तपकरते थे ॥ ११ ॥

ततोऽस्यतेजसाव्याप्तं विश्वंसर्वंचराचरम् ॥
अग्निवर्णाजटाजाताः पाराशर्यस्यधीमतः॥ १२ ॥

तब इनके तेजसे चराचर सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होगया और बुद्धिमान् व्यासजी की जटा अग्निवर्ण की सी होगई ॥ १२ ॥

ततोस्यतेजआलक्ष्य भयमापशचीपतिः ॥
तुरासाहंतदादृष्ट्वाभयत्रस्तंश्रमातुरम् ॥ १३ ॥

तब इन (व्यासजी) के तेज से इन्द्रको भय (डर) हुवा तब इन्द्रको भयसे व्याकुल देखकर ॥ १३ ॥

उवाचभगवान्रुद्रोमघवन्तंतथास्थितम् ॥
॥ शंकर उवाच ॥
कथमिन्द्राद्यभीतोऽसिकिंदुःखंतेसुरेश्वर ॥ १४ ॥

इन्द्र से भगवान् रुद्र बोले कि हे इन्द्र ! तुम क्यों भय भीतहोतेहो अपने दुःख का कारण कहो ॥ १४ ॥

अमर्षोनैवकर्तव्यस्तापसेषुकदाचन ॥
तपश्चरन्तिमुनयोऽज्ञात्वामांशक्तिसंयुतम्॥ १५ ॥

तपस्वियों से कभी अमर्ष नहीं करना चाहिये मुझको शक्ति संयुक्त जानकर महर्षि तप करते हैं ॥ १५ ॥

नत्वेतेऽहितमिच्छन्तितापसाः सर्वथैवहि ॥
इत्युक्तवचनःशक्रस्तमुवाचवृषध्वजम् ॥ १६ ॥

यह तपस्वी कभी किसी का अहित (नुकसान) नहीं चाहते यह वचन सुनकर इन्द्र शिवजी से बोलतेभये ॥ १६ ॥

कस्मात्तपस्यतिव्यासःकोऽर्थस्तस्यमनोगतः ॥
शिव उवाच ॥
पाराशर्यस्तुपुत्रार्थीतपश्चरतिदुश्चरम् ॥ १७ ॥

कि, व्यासजी किस अर्थ तपकररहे हैं और उनके मनमें क्या अभिलाषाहै तब तो शिवजी बोलतेभये कि हे इन्द्र ! व्यासजी पुत्रके हेतु कठिन तप कररहे हैं ॥ १७ ॥

पूर्णंवर्षशतंजातं ददाम्यद्यसुतंशुभम् ॥

सूत उवाच ॥

इत्युक्त्वावासवंरुद्रोदयथामुदितानन: ॥ १८ ॥

और सौ १०० वर्ष होगये अब मैं उनके पासजाकर उनको पुत्र दूंगा तब सूतजी बोले यह कहकर दयासे युक्त प्रसन्नमन ॥ १८ ॥

गत्वाऋषिसमीपंतु तमुवाचजगद्गुरुः ॥

उत्तिष्ठवासवीपुत्र पुत्रस्तेभविताशुभः ॥ १९ ॥

भगवान् जगद्गुरु शिवजी व्यासजीके निकटजाकर बोले कि, हे व्यासजी ! अब तुम उठो तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ १९ ॥

सर्वतेजोमयोज्ञानीकीर्तिकर्तातवाऽनघ ॥

अखिलस्यजनस्यात्रवल्लभस्तेसुतःसदा ॥ २० ॥

हे अनघ ! सब तेजसे युक्त ज्ञानी और तुम्हारी कीर्तिका करने वालाहोगा तथा संपूर्ण प्राणियोंका प्यारा तुम्हारा पुत्रहोगा॥ २०॥

भविष्यतिगुणैः पूर्णःसात्विकैःसत्यविक्रमः ॥

सूत उवाच ॥

तदाऽऽकर्ण्यवचःश्लक्ष्णंकृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २१ ॥

और सात्विकगुणों से पूर्ण सत्यपराक्रमी होगा सूतजी बोले व्यासजी यह वचन सुनकर ॥ २१ ॥

शूलपाणिंनमस्कृत्यजगामाश्रममात्मनः ॥

सगत्वाऽऽश्रममेवाऽऽशुबहुवर्षश्रमातुरः ॥ २२ ॥

शिवजी को प्रणामकर अपने आश्रममें गये और बहुत वर्षों के श्रम से आतुरहुये आश्रम में जाकर ॥ २२ ॥

अरणीसहितंगुह्यंममन्थाग्निंचिकीर्षया ॥
मन्थनंकुर्वतस्तस्यचित्तेचिन्ताभरस्तदा ॥ २३ ॥
प्रादुर्बभूवसहसासुतोत्पत्तौमहात्मनः ॥
मन्थानारणिसंयोगान्मन्थनाच्चसमुद्भवः ॥ २४ ॥
पावकस्ययथातद्वत्कथंमेस्यात्सुखोद्भवः ॥
पुत्रारणिस्तुव्याख्यातासाममाद्यनविद्यते ॥ २५ ॥

अरणी सहित गुप्तहुई अग्निको मथनेलगे कि उसीसमय पर पुत्रहोने की चिन्ताहुई कि जैसे मंथान और अरणी के संयोग से अग्नि प्रगटहोती है और वैसेही हमारे पुत्र कैसे होगा स्त्री तो हमारे है ही नहीं ॥ २३ । २४ । २५ ॥

तरुणीरूपसंपन्ना कुलोत्पन्नापतिव्रता ॥
कथंकरोमिकान्तांचपादयोः शृङ्खलासमाम् ॥ २६ ॥

रूपसंपन्न अच्छे कुलमें उत्पन्न पतिव्रता स्त्री जो चरणों की शृङ्खला के समान है तो मैं किस प्रकार स्वीकार करूं ॥ २६ ॥

पुत्रोत्पादनदक्षांचपातिव्रत्येसदास्थिताम् ॥
पतिव्रतापिदक्षापिरूपवत्यपिकामिनी ॥ २७ ॥

पुत्रके उत्पन्न करने में दक्ष पतिके व्रतमें सदास्थित पति-व्रता दक्ष और रूपवती कामिनी भी ॥ २७ ॥

सदाबन्धनरूपाचस्वेच्छासुखविधायिनी ॥
शिवोपिवर्त्तते नित्यंकामिनीपाशसंयुतः ॥ २८ ॥

स्वेच्छा से सुखदेनेवाली स्त्री भी सदा बंधनरूप है शिवजी भी सदाकामिनीरूप पाशमें संयुक्तरहते हैं ॥ २८ ॥

कथंकरोम्यहंचात्रदुर्घटंचगृहाश्रमम् ॥
एवंचिन्तयतस्तस्यघृताचीदिव्यरूपिणी ॥ २९ ॥

तौ भला मैं किसप्रकार दुर्घटगृहस्थाश्रम को करसक्ता हूं यह उन (व्यासजी) के विचार करनेपर दिव्यरूपवती घृताची ॥२९॥

प्राप्तादृष्टिपथंतत्र समीपेगगनेस्थिता ॥
तांदृष्ट्वाचपलापाङ्गीं समीपस्थांवराप्सराम् ॥ ३० ॥

समीपही आकाश में स्थित हुई दर्शनपथ में प्राप्तहुई उस चञ्चल अङ्गवाली श्रेष्ठ अप्सरा को समीपमें स्थित देखकर॥३०॥

पञ्चबाणपरीताङ्गस्तूर्णमासीद्धृतव्रतः ॥
चिन्तयामासचतदाकिंकरोम्यद्यसङ्कटे ॥ ३१ ॥

तुरन्तही धृतव्रत व्यासजी काम से पीड़ित हुये और विचार करने लगे कि अब मैं इस आपदा (सङ्कट) में क्या करूं॥३१॥

धर्मस्यपुरतःप्राप्ते कामभावेदुरासदे ॥
अङ्गीकरोमियद्येनांवञ्चनार्थमिहागताम् ॥ ३२ ॥

कि धर्म के आगे दुरासद कामभाव प्राप्त हुवा है यदि जो इसको अंगीकार करूं जो कि मुझे वंचन (छलने के वास्ते) करनेको आई है ॥ ३२ ॥

हसिष्यन्तिमहात्मानस्तापसायान्तुविह्वलम् ॥
तपस्तप्त्वामहाघोरं पूर्णंवर्षशतंत्विह ॥ ३३ ॥

तो तपस्वी और महात्मा मुझे हँसेगे कि यह विह्वल होगये देखो इन्होंने १०० सौवर्ष तप करके भी ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वाप्सरांचविवशः कथंजातोमहातपाः ॥
कामंनिन्दापिभवतु यदिस्यादतुलंसुखम् ॥ ३४ ॥

महातपस्वी अप्सरा को देखकर कैसे व्याकुल होगये अच्छा यदि अतुल सुख मिलै तो चाहै निंदाभी हो ॥ ३४ ॥

गृहस्थाश्रमसंभूतंसुखदंपुत्रकामदम् ॥

स्वर्गदंचतथाप्रोक्तं ज्ञानिनांमोक्षदंतथा ॥ ३५ ॥

जो गृहस्थाश्रमसे पुत्ररूपी सुखकी प्राप्तिहो सो गृहाश्रम सुख ज्ञान और मुक्तिका देनेवाला कहाहै ॥ ३५ ॥

नभविष्यतितन्नूनमनयादेवकन्यया ॥
नारदाच्चमयापूर्वं श्रुतमस्तिकथानकम् ॥
यथोर्वशीवशोराजा पराभूतः पुरूरवाः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणेप्रथमस्कन्धेव्यास
पुत्रचिन्तनोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वह इस देवकन्या से तो होही नहींसक्ता मैंने नारदजी से पहिले एक कथानक सुनाथा कि, पुरूरवा राजा उर्वशीके वशीभूत होकर पराभूत हुयेथे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणेप्रथमस्कन्धेभाषाटीकायां
व्यासपुत्रचिंतनोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

श्रीसूत उवाच ॥

दृष्ट्वातामसितापाङ्गींव्यासश्चिन्तापरोऽभवत् ॥
किंकरोमिनमेयोग्यादेवकन्येयमप्सराः ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि इस प्रकार घृताचीनाम अप्सरा को देखकर व्यासजी चिंता करने लगे कि मैं क्याकरूं यहतो देवकन्या अप्सरा मेरे योग्य नहीं है ॥ १ ॥

---

१ ऋषिगायत्रीसारमात्रा ॥ गोभिलसूत्रप्रमाणम् ॥

एवंचिन्तयमानंतुदृष्ट्वा व्यासंतदाप्सराः ॥
भयभीताहिसंजाता शापंमांविसृजेदयम् ॥ २ ॥

इस प्रकार अप्सराने व्यासजी को चिंताकुलित देखकर भय भीत हुई कि यह मुझको शाप न दे देवैं ॥ २ ॥

साकृत्वाऽऽथशुकीरूपं निर्गताभयविह्वला ॥
कृष्णस्तुविस्मयंप्राप्तो विहङ्गींतांविलोकयन् ॥ ३ ॥

तब वह शुकीका रूप धारण कर भयसे व्याकुल हो वहाँ (आकाश) से चली और द्वैपायन व्यासजी उसको विहंगी रूपसे देखकर बड़े विस्मितहुये ॥ ३ ॥

कामस्तुदेहेव्यासस्य दर्शनादेवसङ्गतः ॥
मनोऽतिविस्मितंजातं सर्वगात्रेषुविस्मितः ॥ ४ ॥

उसके दर्शनसेही व्यासजी की देहमें काम जागरूक हुवाथा मन बड़ा विस्मितथा सारा शरीर शिथिलथा ॥ ४ ॥

सतुधैर्येणमहता निगृह्णन्मानसंमुनिः ॥
नशशाकनियन्तुंच सव्यासःप्रसृतंमनः ॥ ५ ॥

फिर बड़े धैर्य से मुनिने मनको ग्रहण करके भी वहमन ग्रहण न करसके ॥ ५ ॥

बहुशोगृह्यमाणंच घृताच्यामोहितंमनः ॥
भावित्वान्नैवविधृतं व्यासस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥
मथनंकुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ॥
अरण्यामेवसहसा तस्यशुक्रमथापतत् ॥ ७ ॥

१-सामगानगायिनिपूर्णोदय कारिणि विजये जयन्ति अपराजिते सर्व सुन्दरि रक्तांशुकेसूर्य्यकोटिसंकाशेचंद्रकोटिसुशीतले अग्निकोटि दहनशीले यमकोटिक्रूरे इस प्रकार शुकीरूप होकर प्रगट हुई थीं इसीसे शुकदेवका जन्म हुआहै तिससे शुक-देव नाम हुआहै ॥

बहुत ग्रहण करने परभी घृताची नाम अप्सरामें मन मोहित होगया और होनहारके वश महातेजस्वी वेगधारण न करसके और उस समय अग्निके निमित्त अरणी मथन करते हुये सहसा मुनि (व्यासजी) का वीर्य अरणी में पतितहुवा ॥ ६ । ७ ॥

सोऽविचिन्त्यतथापातं ममन्थारणिमेवच ॥
तस्माच्छुकःसमुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः॥ ८ ॥

वह उस वीर्यपातको न जानकर अरणी को मथन करतेही रहे उससे व्यासजी की आकृति (आकार) के समान अति मनोहर शुक प्रकट हुआ ॥ ८ ॥

विस्मयंजनयन्बालः संजातस्तदरण्यजः ॥
यथाऽध्वरेसमिद्धोग्निर्भातिहव्येनदीप्तिमान् ॥ ९ ॥

वह बालक विस्मय उत्पन्न करता अरणी से प्रगट हुआ जैसे यज्ञ हविसे प्रदीप्त होती है ॥ ६ ॥

व्यासस्तुसुतमालोक्य विस्मयंपरमंगतः ॥
किमेतदितिसंचिन्त्य वरदानाच्छिवस्यवै ॥ १० ॥

व्यास इसप्रकार पुत्रको देखकर बड़े विस्मितहुये और कहा कि यह क्याहै?ऐसा विचार कर फिर शिवजीका वरदान मानते हुये ॥ १० ॥

तेजोरूपीशुकोजातोप्यरणीगर्भसंभवः ॥
द्वितीयोग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानःस्वतेजसा ॥ ११ ॥

यह अरणीके गर्भ से तेजोरूप शुक प्रगट हुयेहैं जो अपने तेजसे दूसरी अग्नि के समान दीप्तिमान् हैं ॥ ११ ॥

विलोकयामासतदा व्यासस्तुमुदितंसुतम् ॥
दिव्येनतेजसायुक्तं गार्हपत्यमिवापरम् ॥ १२ ॥

तब व्यासजीने अपने पुत्रको प्रसन्न देखकर जो कि दिव्यतेज से युक्त होकर दूसरी गार्हपत्य अग्निके समान प्रकाशित था ॥१२॥

गङ्गान्तःस्नापयामास समागत्यगिरेस्तदा ॥
पुष्पवृष्टिस्तुखाज्जाताशिशोरुपरितापसाः ॥ १३ ॥

और पर्वतपरसे उतर कर गंगामें स्नान कराते हुये हे तपस्वियो ! उस समय उस बालक के ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होती हुई ॥ १३ ॥

जातकर्मादिकंचक्रे व्यासस्तस्यमहात्मनः ॥
देवदुन्दुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

तब व्यासजी ने उस महात्मा का जातकर्म किया देवताओं ने दुंदुभी बजाई और अप्सरा गण नृत्य करनेलगीं ॥ १४ ॥

जगुर्गन्धर्वपतयो मुदितास्तेदिदृक्षवः ॥
विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुःशुकसंभवे ॥ १५ ॥

और देखकर गंधर्वपति प्रसन्नहो गानकरने लगे विश्वावसु, और नारद तथा शुकदेव के प्रगट होनेमें ॥ १५ ॥

तुष्टुवुर्मुदिताःसर्वे देवाविद्याधरास्तथा ॥
दृष्ट्वाव्याससुतंदिव्यमरणीगर्भसंभवम् ॥ १६ ॥

सर्व विद्याधरादिक प्रसन्न होते भये और अरणी गर्भसंभूत दिव्य व्यासपुत्रको देखकर ॥ १६ ॥

अन्तरिक्षात्पपातोर्व्यां दण्डःकृष्णाजिनंशुभम् ॥
कमण्डलुस्तथादिव्यः शुकस्यार्थेद्विजोत्तमाः॥१७॥

अन्तरिक्षसे पृथ्वीमें दिव्य कृष्णाजिन और दण्ड पतितहुआ हे ब्राह्मणो ! शुकदेवजी के निमित्त दिव्यही कमंडलुभी आनकर प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

सद्यःसवत्रृधेबालो जातमात्रोतिदीप्तिमान् ॥
तस्योपनयनंचक्रे व्यासोविद्याविधानवित् ॥ १८॥

उत्पन्न होतेही वह दीप्तिमान् बालक वृद्धिको प्राप्त होने लगा विद्या विधान के ज्ञाता व्यासजीने उसका उपनयन(यज्ञोपवीत) किया ॥ १८ ॥

उत्पन्नमात्रंतंवेदाः सरहस्याःससंग्रहाः ॥
उपतस्थुर्महात्मानं यथास्यपितरंतथा ॥ १९ ॥

उत्पन्न होतेही रहस्यसहित संपूर्ण वेद इनके पिताके समान उनको भी उपस्थित होते हुये ॥ १६ ॥

यतोदृष्टंशुकीरूपं घृताच्याःसंभवेतदा ॥
शुकेतिनामपुत्रस्य चकारमुनिसत्तमः ॥ २० ॥

जो कि घृताचीके शुकीरूप होने के उपरांत इन व्यासजी के कामकी उत्पत्ति हुईथी इस कारण से व्यासजी पुत्रका नाम भी शुकही रक्खा ॥ २० ॥

बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वाव्याससुतस्तदा ॥
व्रतानिब्रह्मचर्य्यस्य चकारविधिपूर्वकम् ॥ २१॥

फिर व्यासजी के पुत्रने गुरु बृहस्पतिजीको उपाध्याय करके ब्रह्मचर्य्य के व्रतोंको विधिपूर्वक किया ॥ २१ ॥

सोऽधीत्यनिखिलान्वेदान्सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥
धर्मशास्त्राणिसर्वाणि कृत्वागुरुकुलेशुकः ॥ २२ ॥

फिर शीघ्रही आवृत्ति के समान रहस्य और संग्रह सहित संपूर्ण वेदों को पढ़कर तथा संपूर्ण धर्मशास्त्रों का अध्ययन करके गुरुकुल में निवासकर ॥ २२ ॥

गुरवेदक्षिणांदत्त्वा समावृत्तोमुनिस्तदा ॥
आजगामपितुःपार्श्वे कृष्णद्वैपायनस्यच ॥ २३ ॥

गुरुदक्षिणा देकर फिर समावर्तन के निमित्त अपने पिता कृष्ण द्वैपायन (व्यासजी) के समीप आये ॥ २३ ॥

दृष्ट्वाव्यासःशुकंप्राप्तं प्रेम्णोत्थायससंभ्रमः ॥
आलिलिङ्गमुहुर्घ्राणं मूर्द्धितस्य चकार ह ॥ २४ ॥

व्यासजी पुत्रको आयाहुआ देखकर प्रेमसे उठकर उसेआलिंगन कर उनका शिर सूँघते हुये ॥ २४ ॥

पप्रच्छकुशलंव्यासस्तथाचाध्ययनंशुचिः ॥
आश्वास्यस्थापयामास शुकंतत्राऽऽश्रमेशुभे॥ २५ ॥

व्यासजीने कुशल और अध्ययन की बात पूंछी और आश्वासनकर अपने आश्रममें शुकदेवजी को स्थित(बैठाया)किया २५॥

दारकर्मततोव्यासः शुकस्यपर्यचिन्तयत् ॥
कन्यांमुनिसुतांकान्तामपृच्छदतिवेगवान् ॥ २६ ॥

और फिर व्यासजीने शुकदेव के विवाह के निमित्त विचार किया और किसी मुनिसुता कन्या के निमित्त पूंछा ॥ २६ ॥

शुकंप्राहसुतंव्यासो वेदोऽधीतस्त्वयाऽनघ ॥
धर्मशास्त्राणिसर्वाणि कुरुभार्यां महामते ॥ २७ ॥

व्यासजी पुत्रसे बोले कि हे पापरहित!तुमने सब वेदपाठकिया और सब धर्मशास्त्र पढ़े हे महामते ! तुम अब उत्तम भार्याको ग्रहण करो ॥ २७ ॥

गार्हस्थ्यंचसमासाद्य यजदेवान्पितॄनथ ॥
ऋणान्मोचयमांपुत्र प्राप्यदारांमनोरमाम् ॥ २८ ॥

गृहस्थ को करिके देवता और पितरों का यजन करो और हे पुत्र ! तुम मनोहर भार्या को प्राप्त होकर मुझे ऋण से उद्धार करो ॥ २८ ॥

अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गोनैवचनैवच ॥
तस्मात्पुत्रमहाभाग कुरुष्वाद्यगृहाश्रमम् ॥ २९ ॥
कृत्वागृहाश्रमंपुत्र सुखिनंकुरुमांशुक ॥
आशामेमहतीपुत्र पूरयस्व महामते ॥ ३० ॥
तपस्तप्त्वामहाघोरं प्राप्तोऽसित्वमयोनिजः ॥
देवरूपीमहाप्राज्ञ पाहिमांपितरंशुक ॥ ३१ ॥

कि स्वर्ग में अपुत्रकी गति कभी भी नहींहोती और न स्वर्ग होताहै हेमहाभाग! इससे तुम विवाह करिकै गृहस्थाश्रम करो हे पुत्र! गृहस्थाश्रम करिकै मुझको सुखी करो हे महामते पुत्र! मेरी आशाको तुम पूर्णकरो तुमको हमने महाघोर तपस्या करिकै अयोनिज पुत्र पायाहै हे देवरूप, महा बुद्धिमन्! मुझ पिता की रक्षाकरो ॥ २९। ३०। ३१ ॥

सूत उवाच ॥

इतिवादिनमभ्याशे प्राप्तःप्राहशुकस्तदा ॥
विरक्तःसोऽतिरक्तंतं साक्षात्पितरमात्मनः॥ ३२ ॥

सूतजी बोले कि, इसप्रकार निकटवर्त्ती पिता के कहनेपर अत्यंत विरक्त शुकदेवजी अतिरागी साक्षात् अपने पितासे बोले ३२॥

शुक उवाच ॥

चौ० ॥ लौकिक बात हुई बहुभांती। तत्त्व बात कहिये जो पोसाती ॥ १ ॥ जासों लहौंमुक्ति करिधारण। सो सबभांति सुनावहु कारण ॥ २ ॥

किंत्वंवदसिधर्मज्ञ वेदव्यासमहामते ॥
तत्त्वेनशाधिशिष्यंमांत्वदाज्ञांकरवाण्यलम् ॥ ३३ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि हे वेदव्यास, महाबुद्धिमन्! यह

आप क्या कहते हैं आप मुझको शिष्य जानकर तत्त्वज्ञान समझाइये कि आपकी मैं आज्ञा पालन करूंगा ॥ ३३

व्यास उवाच ॥

त्वदर्थेयत्तपस्तप्तं मयापुत्रशतंसमाः ॥
प्राप्तस्त्वंचातिदुःखेन शिवस्याऽऽराधनेन च॥३४॥

व्यासजी बोले कि हे पुत्र! हमने तुम्हारे लिये सौ १०० वर्षतक तपस्या किया शिवकी आराधनासे बड़े दुःख से तुम प्राप्त हुयेहो ॥ ३४ ॥

ददामितववित्तंतुप्रार्थयित्वाऽथभूपतिम् ॥
सुखंभुङ्क्ष्वमहाप्राज्ञ प्राप्ययौवनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

किसी राजा से कहकर मैं तुमको बड़ा धन दूंगा हे महाप्राज्ञ! यौवन अवस्थाको प्राप्तहो अनेक सुख भोगकरो ॥ ३५ ॥

शुक उवाच ॥

किंसुखंमानुषेलोके ब्रूहितातनिरामयम् ॥
दुःखविद्धंसुखंप्राज्ञा न वदन्तिसुखंकिल ॥ ३६ ॥

शुकदेवजी बोले कि हे तात! मानुषलोक में निरामय सुख क्या है? जो कि दुःख मिला हुआ सुखहै उसको महाबुद्धिमान् सुख नहीं कह सकते ॥ ३६ ॥

स्त्रियंकृत्वामहाभाग भवामितद्वशानुगः ॥
सुखंकिंपरतन्त्रस्य स्त्रीजितस्यविशेषतः ॥ ३७ ॥

हे महाभाग! स्त्री को करके मैं उसके वशीभूत होजाऊं तो परतंत्र और स्त्री जितको क्या सुख होता है ॥ ३७ ॥

कदाचिदपिमुच्येत लोहकाष्ठादियन्त्रितः ॥
पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येतकर्हिचित् ॥ ३८ ॥

चाहै लोहकाष्ठादि यंत्र से कभी छूटजाय परंतु पुत्रदार में वंधाहुआ कभी मुक्त नहीं होताहै ॥ ३८ ॥

विण्मूत्रसंभवोदेहो नारीणांतन्मयस्तथा ॥
कःप्रीतिंतत्रविप्रेन्द्र विबुधःकर्तुमिच्छति ॥ ३९ ॥

यह देह विष्ठा मूत्रसे संबद्धहै इसी प्रकार स्त्रीसे निबद्धहै हे विप्रेन्द्र ! उसमें विद्वान्को क्या प्रीति होसकतीहै ॥ ३६ ॥

अयोनिजोऽहंविप्रर्षे योनौमेकीदृशीमतिः ॥
नवाञ्छाम्यहमग्रेपियोनावेवसमुद्भवम् ॥ ४० ॥

हे विप्रर्षे ! जब कि मैं अयोनिज हूं तो मेरी योनियों में कैसे प्रीति होसक्ती है मैं आगे भी अब योनि से उत्पन्न होना नहीं चाहता ॥ ४० ॥

विट्सुखंकिमुवाञ्छामित्यक्त्वाहंसुखमद्भुतम् ॥
आत्मारामश्चभूयोऽपि नभवत्यतिलोलुपः ॥४१॥

अद्भुत आत्मा का सुख छोड़कर क्या मैं विष्ठामूत्र के सुख की इच्छा करूं आत्माराम हो करिकै फिर लोभी होना नहीं चाहते ॥ ४१ ॥

प्रथमंपठितावेदामया विस्तारिताश्चते ॥
हिंसामयास्तेपठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥ ४२ ॥

मैंने पहिले विस्तारपूर्वक सब वेद पढ़े परन्तु वह कर्म मार्ग के प्रवर्तक होने में हिंसामयहैं ॥ ४२ ॥

बृहस्पतिर्गुरुःप्राप्तः सोऽपिमग्नोगृहार्णवे ॥
अविद्याग्रस्तहृदयः कथंतारयितुंक्षमः ॥ ४३ ॥

गुरु बृहस्पतिजी प्राप्त हुये थे याने मिले जो कि वहभी गृह-सागरमें डूबे हुये हैं और अविद्या करके उनका हृदय ग्रस्त है तो हमें कैसे तार सक्ते हैं ॥ ४३ ॥

रोगग्रस्तोयथावैद्यः पररोगचिकित्सकः ॥
तथागुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयंविडम्बना ॥ ४४ ॥

जैसे कि रोगी वैद्य अन्यकी क्या चिकित्सा करैगा ऐसेही हमतो मुमुक्षु और गुरु स्वयं गृहस्थाश्रम में मग्न होने से हम को कैसे तारैगा यह गृहस्थ बड़ी विडंबनामात्र है ॥ ४४ ॥

कृत्वाप्रणामंगुरवेत्वत्समीपमुपागतः ॥
त्राहिमांतत्त्वबोधेन भीतंसंसारसर्पतः ॥ ४५ ॥

गुरुको प्रणाम करिकै मैं आपके समीप आयाहूं संसाररूपसर्प से डरे हुये मेरी आप रक्षा कीजिये और तत्त्व ज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥

संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणंनभचक्रवत् ॥
नचविश्रमणंक्कापि सूर्यस्येवदिवानिशि ॥ ४६ ॥

इस महाघोर संसार में आकाशचक्र की समान भ्रमण करते सूर्य की समान रातदिन कहीं विश्राम नहीं मिलता है ॥ ४६ ॥

किंसुखंतातसंसारे निजतत्त्वविचारणात् ॥
मूढानांसुखबुद्धिस्तु विट्सुकीटसुखंयथा ॥ ४७ ॥

निजतत्त्व के विचार के विना हे तात ! संसार में क्या सुख है मूढ़ों को सुखबुद्धि इस प्रकार है जैसे मलमें कीट सुख मानते हैं ॥ ४७ ॥

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसाररागिणश्चये ॥
तेभ्यःपरोनमूर्खोऽस्ति सधर्माश्वाश्वसूकरैः ॥ ४८ ॥

वेद शास्त्र पढ़ करकै भी जो संसार में रागी हैं उनकी बराबर कोई मूर्ख नहींहै वह कुत्ते अश्व व सूकरकी समान धर्मवालेहैं ४८॥

मानुष्यंदुर्लभंप्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्यच ॥
बध्यतेयदिसंसारे को विमुच्येतमानवः ॥ ४९ ॥

दुर्लभ वेद शास्त्रका अध्ययन करके यदि संसार में बंधनको प्राप्त हो तौ फिर किसकी मुक्ति होसक्ती है ॥ ४६ ॥

नातःपरतरंलोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम् ॥
पुत्रदारगृहासक्तः पण्डितः परिगीयते ॥ ५० ॥

इससे अधिक लोकमें और आश्चर्य्य नहींहै जो पुत्र दाराओं से आसक्त होकर पंडित गायाजाताहै ॥ ५० ॥

नबाध्यतेयःसंसारे नरोमायागुणैस्त्रिभिः ॥
सविद्वान्सचमेधावी शास्त्रपारंगतोहिसः ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य संसार में मायाके तीनों गुणोंसे बाधित नहींहोता वही विद्वान् मेधावी शास्त्रका पारगामी जानो ॥ ५१ ॥

किंवृथाऽध्ययनेनात्र दृढबन्धकरेण च ॥
पठितव्यंतदेवाशु मोचयेद्भवबन्धनात् ॥ ५२ ॥

वृथा अध्ययन और दृढ़बंधन करने से क्या है? वही शीघ्र पढ़ना चाहिये जो भवबंधन से मुक्त करदे ॥ ५२ ॥

गृह्णातिपुरुषंयस्माद्गृहंतेनप्रकीर्तितम् ॥
क्वसुखंबन्धनागारेतेनभीतोऽस्म्यहंपितः ॥ ५३ ॥

पुरुषको ग्रहण करै उसीको गृह कहते हैं हे पितः ! बंधनागारमें क्या सुख है ? इसीसे मैं भीत होरहा हूं ॥ ५३ ॥

येऽबुधामन्दमतयो विधिनामुषिताश्चये ॥
तेप्राप्यमानुषंजन्म पुनर्बन्धंविशन्त्युत ॥ ५४ ॥

जो अबुध मंदमति प्रारब्ध से वंचित हैं वे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर फिर बंधन में प्रवेश करते हैं ॥ ५४ ॥

व्यास उवाच ॥

नगृहंबन्धनागारं बन्धनेनचकारणम् ॥
मनसायोविनिर्मुक्तो गृहस्थोपिविमुच्यते ॥ ५५ ॥

व्यासजी बोले कि हे बेटा ! घर बंधनागार नहीं है न बंधन में कारणहै जो मनसे निर्मुक्तहै वह गृहस्थभी मुक्त होजाताहै ५५॥

न्यायागतधनःकुर्वन्वेदोक्तं[illegible] ॥
गृहस्थोऽपिविमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक्शुचिः॥५६॥

न्यायसे प्राप्तधनको लेनेवाले विधिपूर्वक वेद अध्ययन करने वाले श्राद्धकारी सत्यवाक् पवित्र गृहस्थ भी मुक्त होजाताहै ॥५६॥

ब्रह्मचारीयतिश्चैव वानप्रस्थोव्रतेस्थितः ॥
गृहस्थंसमुपासन्ते मध्याह्नातिक्रमेसदा ॥ ५७ ॥

ब्रह्मचारी, यति, वानप्रस्थ व्रत में स्थित मध्याह्न के अति-क्रमण होनेसे सदा गृहस्थ की इच्छा करते हैं ॥ ५७ ॥

श्रद्धयाचान्नदानेन वाचासूनृतयातथा ॥
उपकुर्वन्तिधर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः ॥ ५८ ॥

श्रद्धासे अन्नदान सत्य निंदारहित वाणी से धर्मिष्ठ गृहस्थ आश्रम वासियों का उपकार करते हैं ॥ ५८ ॥

गृहाश्रमात्परोधर्मो नदृष्टोनचवैश्रुतः ॥
वशिष्ठादिभि[illegible] ॥ ५९ ॥

गृहाश्रम से अधिक धर्म न हमने देखा न सुना है जिनको वशिष्ठादि आचार्यों और ज्ञानियोंने आचरण कियाहै ॥ ५९ ॥

किमसाध्यंमहाभाग [illegible] ॥
[illegible] ॥ ६० ॥

हे महाभाग ! वह वेदोक्तकर्म करते गृहस्थ को क्या असाध्य है स्वर्ग मोक्षादि जो जो वांछितहों उसकी प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥

आश्रमाद्[illegible] ॥
[illegible] ॥ ६१ ॥

और उन्हीं को धर्मज्ञाता कहते हैं आश्रमसेही आश्रममें जाय इस कारण अग्न्याधान करके यथोक्त कर्मकोकरो ॥६१॥

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च संतर्प्यविधिवत्सुत ॥
पुत्रमुत्पाद्यधर्मज्ञ संयोज्यचगृहाश्रमे ॥ ६२ ॥

हे पुत्र ! विधिपूर्वक देवता, पितर, मनुष्यों को तृप्त करिके गृहस्थाश्रम में पुत्र उत्पन्न कर उसे गृहाश्रममें संयुक्त करिके॥६२॥

त्यक्त्वागृहंवनंगत्वा कर्तासिव्रतमुत्तमम् ॥
वानप्रस्थाश्रमंकृत्वा संन्यासंचततःपरम्॥ ६३ ॥

फिर घर छोड़ वनमें जाकर उत्तम व्रत करना पहिले वान-प्रस्थ और फिर यथाक्रम से संन्यासाश्रम करना ॥ ६३ ॥

इन्द्रियाणिमहाभाग मादकानिसुनिश्चितम् ॥
अदारस्यदुरन्तानि पञ्चैवमनसासह ॥ ६४ ॥

हे महाभाग ! यह इन्द्रियां अवश्यही मादक हैं यह पांचों मनके सहित विना स्त्री के दुरंतहै ॥ ६४ ॥

तस्माद्दारान्प्रकुर्वीततज्जयायमहामते ॥
वार्धकेतपआतिष्ठेदितिशास्त्रोदितंवचः ॥ ६५ ॥

हे महामते ! इसकारण उनके जयके निमित्त दारसंग्रह करो वार्धक्य होने में तपकरै यह शास्त्रमें वचन कहा है ॥ ६५ ॥

विश्वामित्रोमहाभागतपःकृत्वाऽतिदुश्चरम् ॥
त्रीणिवर्षसहस्राणिनिराहारोजितेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

हे महाभाग ! विश्वामित्र भी दुश्चर तप करिकै तीन ३००० वर्षतक निराहार जितेन्द्रियरहे ॥ ६६ ॥

मोहितश्चमहातेजवनेमेनकयास्थितः ॥
शकुन्तलासमुत्पन्ना पुत्रीतद्वीर्यजाशुभा ॥ ६७ ॥

और फिर तिसपरभी वह महातेजस्वी वनमें मेनकानाम अ-प्सरा को देख मोहितही होगये उन्हींके वीर्य्यसे शकुंतलानाम क कन्या उत्पन्नहुई ॥ ६७ ॥

दृष्ट्वादाशसुतांकालींपितामम पराशरः
कामबाणार्दितःकन्यांतांजग्राहमुनौस्थितः ॥ ६८ ॥

और हमारे पिता पराशरजी दासकन्या काली को देखकर कामबाण से पीडितहोकर उत्तम नौका में स्थित उसे ग्रहण करतेहुये ॥ ६८ ॥

ब्रह्मापिस्वसुतांदृष्ट्वापञ्चबाणप्रपीडितः ॥
धावमानश्चरुद्रेणमूर्च्छितश्चनिवारितः ॥ ६९ ॥

ब्रह्माजी सरस्वतीको देखकर [illegible] हुये थे इसलिये दौड़ते मूर्च्छितहुए उनको शिवजीने निवारण कियाथा ॥ ६९ ॥

कामातुराणांनभयंनलज्जा ।
निद्रातुराणांनभूमिशय्या ॥
क्षुधातुराणांनचकच्चपक्कम् ।
तृष्णातुराणांनचवारिशुद्धिः ॥ ७० ॥

और मनुष्य कामातुर होकर लज्जा छोड़देताहै और जब निद्रा के वशमें मनुष्य होजाताहै तब कुछभी स्थानका ज्ञान नहीं रहता और जब क्षुधा लगती है तब कच्चे पक्के पदार्थका ज्ञान नहीं रहता और जब प्यासलगती है तब शुद्ध जलका ज्ञान नहीं रहता ॥७०॥

तस्मात्त्वमपिकल्[illegible]वचनंहितम् ॥
कुरु[illegible]समाश्रय ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवत[illegible]
शुकदेवजन्मोत्सवशुकव्याससंवादे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे कल्याण ! इससे तुम हमारे कल्याण दायक वचनको मानो और किसी सत्कुलोत्पन्ना कन्या को वरणकर वेदमार्ग का आश्रय करो ॥ ७१ ॥

इति श्रीमाद्भागवतमहापुराणेप्रथमस्कन्धेभाषा
टीकायांशुकदेवजन्मोत्सवशुकव्याससंवा
देतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच ॥

नाहंगृहंकरिष्यामिदुःखदंसर्वदा पितः ॥
वगुरासदृशंनित्यंबन्धनंसर्वदेहिनाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पिताजी ! सब प्रकारके दुःख देने-वाला गृहस्थाश्रम मैं नहीं करूंगा यह मृगबंधिनी (जाल) की समान सब देह धारियोंको बंधनरूपहै ॥ १ ॥

धनचिन्तातुराणांहिकसुखंतातदृश्यते ॥
स्वजनैःखलुपीड्यन्तेनिर्धनालोलुपास्सदाः ॥ २ ॥

हे तात ! धनकी चिंतासे व्याकुलोंको क्या सुख होताहै नि-र्धन लोलुप अपने कुटुम्बियोंसे पीड़ित होते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रोऽपिनसुखीतादृग्यादृशोभिक्षुनिःस्पृहः ॥
कोऽन्यःस्यादिहसंसारेत्रिलोकीविभवेसति ॥ ३ ॥

त्रिलोकीका विभव होनेपर ऐसा तो इन्द्रभी सुखी नहीं है जैसा कि इस संसारमें निस्पृहभिक्षुक सुखीहोताहै फिर और की कौन (गणना) कहै ॥ ३ ॥

तपन्तंतापसंदृष्ट्वामघवादुःखितोभवत् ॥
विघ्नान्बहुविधानस्यकरोतिचदिवस्पतिः ॥ ४ ॥

तपस्वीको तपकरते देखकर स्वर्गपति इन्द्र दुःखीहुये और उसपर अनेक प्रकारके विघ्न करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मापिनसुखीविष्णुर्लक्ष्मीं[illegible] ॥
खेदंप्राप्नोति[illegible]:सह ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी भी सुखी नहीं और [illegible] भी लक्ष्मीको प्राप्त होकर निरंतर असुरों (दैत्यों) से संग्राम (युद्ध) करते हैं ॥ ५ ॥

करोति[illegible] ॥
रमाप[illegible]संसुखम् ॥ ६ ॥

अनेक यत्न करके दुश्चर तपस्या करते हैं रमापति लक्ष्मी होनेपरभी ऐसे हैं तब महासुख किसको है ॥ ६ ॥

शङ्करोऽपिसदादुःखीभवत्येवचवेद्म्यहम् ॥
तपश्चर्यांप्रकुर्वाणोदैत्ययुद्धकरःसदा ॥ ७ ॥

महादेव भी सदा दुःखी हैं यह मैं अच्छीतरह से जानताहूं जो तपश्चर्या करते सदा दैत्योंके साथ युद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

[illegible] ॥
निर्धनस्तु[illegible]प्नोतिमानवः ॥ ८ ॥

धनी पुरुष कभी भी सुखसे नहीं सोते हे तात ! फिर निर्धन (कंगाल) कैसे सुखी होसके हैं ॥ ८ ॥

[illegible]भवम् ॥
नियोज[illegible]दुःखदेसदा ॥ ९ ॥

हे महाभाग ! आप [illegible] कि यह मेरा और सपुत्र

है फिर किसप्रकार महाघोर दुखदायी संसारमें मुझको नियुक्त करतेहो ॥ ६ ॥

जन्मदुःखंजरादुःखंदुखंचमरणेतथा ॥
गर्भवासेपुनर्दुःखंविष्ठामूत्रमयेपितः ॥ १० ॥

जन्मसे दुःख जरासे दुःख मरणसे दुःख फिर हे पितः! विष्ठामय गर्भवास में दुःखहै ॥ १० ॥

तस्मादतिशयंदुःखंतृष्णालोभसमुद्भवम् ॥
याञ्चायांपरमंदुःखंमरणादपिमानद ॥ ११ ॥

इससे तृष्णा लोभ से उत्पन्नहुवा अतिशय दुःखहै हे मानद! जो कि याचना में मरण से भी परम दुःख होता है ॥ ११ ॥

प्रतिग्रहधनाविप्रानबुद्धिबलजीवनाः ॥
पराशापरमंदुःखंमरणंचादिनेदिने ॥ १२ ॥

कि ब्राह्मणों का प्रतिग्रहही दुःखहै यह बुद्धिबलसे जीवन नहीं करते हैं दूसरे की आशा करनाही परम दुःख और दिन दिन मरण है ॥ १२ ॥

पठित्वासकलान्वेदाञ्छास्त्राणिचसमन्ततः ॥
गत्वाचधनिनांकुर्य्यास्तुतिःसर्वात्मनाबुधैः ॥ १३ ॥

सब वेद और शास्त्र पढ़कर पण्डित जाकर सब प्रकार से धनियों की स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

एकोदरस्यकाचिन्तापत्रमूलफलादिभिः ॥
येनकेनाप्युपायेनसंतुष्ट्याचप्रपूर्यते ॥ १४ ॥

एक उदरके निमित्त क्या चिन्ता है जो फल मूल से भी पूर्ण होजाता है अर्थात् जिस किसी प्रकार से इसकी तुष्टी होजाती है ॥ १४ ॥

भार्य्यापुत्रास्तथापौत्रःकुटुम्बेविपुलेसति ॥
पूर्णार्थंचमहादुःखंकसुखंपितरद्भुतम् ॥ १५ ॥

भार्य्या पुत्र पौत्र कुटुंब के विपुल होनेपर उनके भरण पोषण में बड़ा दुःख होताहै हे पितः ! अद्भुत सुखकहांते है ॥१५॥

योगशास्त्रंवदममज्ञानशास्त्रंसुखाकरम् ॥
कर्मकाण्डेऽखिलेतातनरमेऽहंकदाचन ॥ १६ ॥

आप मुझसे योगशास्त्र और ज्ञानशास्त्र सुख की मूल वर्णन कीजिये हे तात ! कर्मकाण्ड में तो मेरा मन किसी प्रकार नहीं रमता है ॥ १६ ॥

वदकर्मक्षयोपायंप्रारब्धंसञ्चितंतथा ॥
वर्तमानंयथानश्येत्रिविधंकर्ममूलजम् ॥ १७ ॥

आप प्रारब्ध, संचित आदि कर्मक्षय के उपायको कहिये जैसे वर्तमान कर्म भी नाशको प्राप्तहो यह तीन प्रकार का नाश होने का उपाय कहो ॥ १७ ॥

जलूकेवसदानारी[illegible] ॥
मूर्खस्तुनविजानातिमोहितोभावचेष्टितः ॥ १८ ॥

जोंककी समान स्त्री पुरुष का सदा रुधिरपीती है लेकिन मूर्खलोग उसको नहीं जानते हैं और भावचेष्टा से मोहित रहता है ॥ १८ ॥

भोगैर्वीर्यंधनंपूर्णंमनःकुटिलभाषणैः ॥
कान्ताहरतिसर्वस्वंकःस्तेनस्तादृशोऽपरः ॥ १९ ॥

भोग से वीर्य को हरलेती है कुटिल भाषण से मन और सब धन हरण करती है बहुत क्या यह कांता सर्वस्व हरणकर लेती है इसकी समान और चौर कौनसा है ॥ १९ ॥

निद्रासुखविनाशार्थंमूर्खस्तुदारसंग्रहम् ॥
करोतिवञ्चितोधात्रादुःखायनसुखायच ॥ २० ॥

यह मूर्ख प्राणी निद्रासुख नाशके निमित्त विधाता से वंचितहुवा दुःखनिमित्त ही दारसंग्रह करता है सुख नहीं होता है ॥ २० ॥

सूत उवाच ॥

एवंविधानिवाक्यानिश्रुत्वाव्यासःशुकस्यच ॥
संप्रापमहतींचिन्तांकिंकरोमीत्यसंशयम् ॥ २१ ॥

सूतजी बोले कि व्यासजी इस प्रकार से श्रीशुकदेवजी की वाक्य (वाणी) को सुनकर बड़ी चिंताको प्राप्तहोतेहुये कहा कि अब मैं क्याकरूं ॥ २१ ॥

तस्यसुस्रुवुरश्रूणिलोचनाद्दुःखजानिच ॥
वेपथुश्चशरीरेऽभूद्ग्लानिंप्रापमनस्तथा ॥ २२ ॥

और मारे दुःखसे उनके नेत्रों में से आंसू निकलनेलगे शरीर में कंपा और ग्लानि प्राप्तहोती हुई ॥ २२ ॥

शोचंतंपितरंदृष्ट्वादीनंशोकपरिप्लुतम् ॥
उवाचपितरंव्यासंविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २३ ॥

इस प्रकार दीन शोकसे व्याकुल पिताजीको शोच करता हुवा देखकरिकै उत्फुल्ल नेत्रहो " श्रीशुकदेव जी " पिता व्यास जी से बोले ॥ २३ ॥

अहोमायाबलंचोग्रंयामोहयतिपण्डितम् ॥
वेदान्तस्यचकर्तारंसर्वज्ञंवेदसम्मतम् ॥ २४ ॥

अहो मायाका बड़ाबल है कि जो पण्डितको भी मोहित करता है जोकि वेदान्तके कर्त्ता सर्वज्ञ और वेद सम्मतहैं ॥२४॥

नजानेकाचसामायाकिंस्वित्साऽतीवदुष्करा ॥
यामोहयतिविद्वांसंव्यासंसत्यवतीसुतम् ॥ २५ ॥

नहीं जानते वह क्या मायाहै और कैसे अतिशय दुस्तर है जो सत्यवती पुत्र व्यास से विद्वान् को भी मोहितकरतीहै॥ २५॥

पुराणानांचवक्तायो निर्माताभारतस्यच ॥
विभागकर्तावेदानांसोऽपिमोहमुपागतः ॥ २६ ॥

जो पुराणों के वक्ता और महाभारत के निर्माता वेदों के विभागकर्त्ता हैं वह भी मोहको प्राप्तहोते हैं ॥ २६ ॥

तांयामिशरणंदेवीं यामोहयतिवैजगत् ॥
ब्रह्माविष्णुहरादींश्चकथाऽन्येषांचकीदृशी ॥ २७ ॥

उसी देवीकीमैं शरणहूं जो कि इस समस्त जगत्को मोहित करती है और ब्रह्मा, विष्णु हरादिकों को भी मोहित करती है तो फिर औरोंकी कथाही क्याहै ॥ २७ ॥

कोऽप्यस्तित्रिपुलोकेषु योनमुह्यतिमायया ॥
यन्मोहंगमिताः पूर्वंब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ २८ ॥

ऐसा त्रिलोकी में कौनसा जो कि मायासे मोहित न हुआहो जिसने पूर्वमेंब्रह्मा,विष्णु और हरादिकोंको भी मोहितकियाहै २८

अहोबलमहावीर्यं देव्याश्चमुनिनिर्मितम् ॥
माययैववशंनीतः सर्वज्ञ ईश्वरःप्रभुः ॥ २९ ॥

अहो देवीका बल वीर्य बड़ा अद्भुत है जिसने सर्वज्ञ ईश्वर को भी अपने वशीभूत करलियाहै ॥ २९ ॥

विष्णवंशसंभवोव्यास इतिपौराणिकाजगुः ॥
सोऽपिमोहार्णवेमग्नो भग्नपोतोवणिग्यथा ॥ ३० ॥

पौराणिक कहते हैं कि व्यासजी विष्णुके अंशहैं सो वह भी

जहाज भंग होने से बानिया के समान मोहार्णव में मग्न हो-रहे हैं ॥ ३० ॥

अश्रुपातंकरोत्यद्य विवशःप्राकृतोयथा ॥
अहोमायाबलंचैतद्दुस्त्यजंपण्डितैरपि ॥ ३१ ॥

इससमय यह विवशहुये प्रकृति के समान अश्रुपात (रोते हैं) करते हैं अहो यह मायाका बल पण्डितों से भी नहीं छोड़ा जाताहै ॥ ३१ ॥

कोऽयंकोऽहंकथंचेह कीदृशोऽयंभ्रमःकिल ॥
पञ्चभूतात्मकेदेहे पितापुत्रेतिवासना ॥ ३२ ॥

यह कौन मैं कौनहूं यह क्या और यह भ्रम कैसाहै और पंच-भूतात्मकदेहमें पिता पुत्रकी वासना है ॥ ३२ ॥

बलिष्ठाखलुमायेयं मायिनामपिमोहिनी ॥
ययाऽभिभूतःकृष्णोपि करोतिरोदनंद्विजः ॥ ३३ ॥

यह माया बड़ी बलिष्ठ है मायियों को भी मोहित करती है जिससे युक्तहोकर महात्माश्रीव्यासजी भी रोदन करते हैं॥३३॥

सूत उवाच ॥

तांनत्वामनसादेवीं सर्वकारणकारणाम् ॥
जननींसर्वदेवानां ब्रह्मादीनांतथेश्वरीम् ॥ ३४ ॥

सूतजीबोले कि इसप्रकार सब कारणकी कारण उसदेवीको प्रणामकरिके जो सब देवताओंकी जननी(पैदाकरनेवाली) और ब्रह्मादिकोंकीभी ईश्वरी है ॥ ३४ ॥

पितरमाहदीनंतं शोकार्णवपरिप्लुतम् ॥
अरणीसम्भवोव्यासं हेतुमद्वचनंशुभम् ॥ ३५॥

शोकार्णव में डूबे दीन (गरीब) हुये उन पिताव्यासजी से

शुक्राचार्य्य जी जो कि अरणी से उत्पन्न हैं वा [illegible] हेतुयुक्त वचन बोले ॥ ३५ ॥

पाराशर्य्य महाभाग सर्वेषांबोधदःस्वयम् ॥
किंशोकंकुरुषेस्वामिन्यथाऽज्ञःप्राकृतोनरः॥ ३६ ॥

हे पाराशर्य महाभाग, व्यासजी! तुम स्वयं सबके ज्ञान देने वालेहो हे स्वामिन्! ऐसा प्राकृत मनुष्यके समान क्यों शोक करतेहो ॥ ३६ ॥

अद्याहंतवपुत्रोऽस्मि नजानेपूर्वजन्मनि
कोऽहंकस्त्वंमहाभाग विभ्रमोऽयंमहात्मनि ॥ ३७ ॥

हे महाभाग! अब तो मैं तुम्हारा पुत्रहूं पूर्व जन्म में न जाने मैं कौन और आप कौन थे यह पिता पुत्रका महात्माओं भ्रमहै ३७

कुरु धैर्य्यं [illegible] त्व [illegible] :कृथाः ॥
[illegible] पुत्रशोकंमहामते ॥ ३८ ॥

आप धैर्य्य से सावधानहो विषाद (रंज) अपने मनमें मत करो हे महामते! यह सब मोहजाल मानकर शोक त्याग न करो ॥ ३८ ॥

क्षुधानिवृत्तिर्भक्षेण नतुवैपुत्रदर्शनात् ॥
पिपासाजलपानेन [illegible] ॥ ३९ ॥

भक्षण करनेसेही क्षुधा निवृत्त होती है पुत्रके दर्शन से नहीं और जलपान (पीने) सेही [illegible] निवृत्त होतीहै पुत्रके दर्शन से नहीं ॥ ३६ ॥

घ्राणंसुखंसुगन्धेन कर्णजंश्रवणेनच ॥
स्त्रीसुखंस्त्रियानूनं पुत्रोऽहंकिंकरोमिते ॥ ४० ॥

सुगन्धद्वारा घ्राणसुख श्रवणद्वारा कर्णसुख स्त्रीका सुख स्त्री से होताहै मैं तुम्हारा पुत्र होकर क्या करूं ॥ ४० ॥

अजीगर्तेनपुत्रोऽपि हरिश्चन्द्रायभूभुजे ॥
पशुकामाययज्ञार्थं दत्तोमौल्येनसर्वथा ॥ ४१ ॥

अजीगर्तने अपना पुत्र राजा हरिश्चन्द्रके निमित्तमौल्य द्वारा यज्ञार्थ प्रदान कियाहै ॥ ४१ ॥

सुखानांसाधनंद्रव्यं धनात्सुखसमुच्चयः ॥
धनमर्जयलोभश्चेत्पुत्रोऽहंकिंकरोम्यहम् ॥ ४२ ॥

सुखोंका साधन द्रव्यहै और धनसे सुख होताहै लोभहो तो धनका अर्जनकरो मुझ पुत्रसे क्या सम्बन्ध है ॥ ४२ ॥

मांप्रबोधयबुद्ध्यात्वं दैवज्ञोसिमहामते ॥
यथामुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने ॥ ४३ ॥

हे महामते ! आप दैवज्ञहो बुद्धिपूर्वक मुझे प्रबोधकरो हे मुने! जिसप्रकार मैं इस महागर्भवाससे मुक्त होजाऊं ॥ ४३ ॥

दुर्लभंमानुषंजन्म कर्मभूमाविहानघ ॥
तत्रापिब्राह्मणत्वंवै दुर्लभंचोत्तमेकुले ॥ ४४ ॥

हे पापरहित ! इस कर्मभूमि में मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है उसमेंभी उत्तम कुलमें जन्म ब्राह्मणत्व होना बड़ाही दुर्लभहै ४४॥

वृद्धोऽहमितिमेबुद्धिर्नापसर्पतिचित्ततः ॥
संसारवासनाजालेनिविष्टावृद्धगामिनी ॥ ४५ ॥

मैं वृद्धहूं यह बुद्धि मेरी चित्त से नहीं जाती है संसार वासना के जाल में वृद्धों के आश्रय होकरभी रमण करतीहै ४५॥

सूत उवाच ॥

इत्युक्तस्तुतदाव्यासःपुत्रेणामितबुद्धिना ॥
प्रत्युवाचशुकंशांतंचतुर्थाश्रममानसम् ॥ ४६ ॥

जब महाबुद्धिमान् व्यास पुत्र ने ऐसा कहा तब चतुर्था-श्रम में मन लगाय शांत रूपहो शुकाचार्य से ॥ ४६ ॥

व्यास उवाच ॥

पठपुत्रमहाभागमयाभागवतंकृतम् ॥
शुभंनचातिविस्तीर्णंपुराणंब्रह्मसम्मितम् ॥ ४७ ॥

व्यासजी बोले कि हे महाभाग,पुत्र ! जो ऐसाहै तो हमारा निर्मित (बनाया हुआ) भागवत पढ़ो जो पुराण शुभवेद स-म्मत है और बड़े विस्तार में नहीं है ॥ ४७ ॥

स्कन्धाद्वादशतत्रैवपञ्चलक्षणसंयुतम् ॥
सर्वेषांचपुराणांनां भूषणंममसम्मतम् ॥ ४८ ॥

बारहस्कंध और पांच लक्षण से युक्त और सब पुराणों का भूषण हमारा सम्मत है ॥ ४८ ॥

सदसज्ज्ञानविज्ञानंश्रुतमात्रेणजायते ॥
येनभागवतेनेहतत्पठत्वंमहामते ॥ ४९ ॥

इससंसारमें जिसके सुननेमात्रसे सवसत्का ज्ञान और विज्ञान होजाताहै हे महामते ! इसकारण उसभागवतको आपपढ़िये ४९॥

वटपत्रशयानायविष्णवेबालरूपिणे ॥
केनाहिमबालभावेननिर्मितोऽहंचिदात्मना ॥ ५० ॥

वटके पत्र में शयनकरते बालरूप विष्णुके निमित्त जब कि वह चिदात्मा बालभावसे स्थित हुये बिचार करते थे कि यह किसने बालभाव से हमको प्रकट किया है ॥ ५० ॥

किमर्थंकेनद्रव्येणकथंजानामिचाखिलम् ॥
इत्येवंचिन्त्यमानायमुकुन्दायमहात्मने ॥ ५१ ॥

किस निमित्त किस द्रव्य से प्रगट किया है और किस प्र-

कार से मैं इस सबको जानूं इस प्रकार विचार करते भगवान् मुकुन्दके निमित्त ॥ ५१ ॥

श्लोकार्द्धंनतयाप्रोक्तंभगवत्याखिलार्थदम् ॥
सर्वंखल्विदमेवाहंनान्यदस्तिसनातनम् ॥ ५२ ॥

इस सब शंका की निवृत्ति के अर्थ उस भगवती ने आधा श्लोक उच्चारण किया था इस सम्पूर्ण जगत् में मैं हीं हूं और कुछ सनातन नहीं है सच्चिदानन्दरूपिणी मैं हीं सनातनी हूं जगत् मिथ्या है ॥ ५२ ॥

तद्वचोविष्णुनापूर्वंसंविज्ञानंमनस्यपि ॥
केनोक्तावागियंसत्याचिन्तयामासचेतसा ॥ ५३ ॥

प्रथम यही वचन विष्णु ने अपने हृदय में धारण किया था और मन में विचारने लगे कि यह सत्यवाणी किसने उच्चारण की ॥ ५३ ॥

कथंवेद्मिप्रवक्तारंस्त्रीपुंसौवानपुंसकम् ॥
इतिचिन्ताप्रयत्नेनधृतंभागवतंहृदि ॥ ५४ ॥

यह कहने वाले को मैं कैसे जानूं यह स्त्री पुरुष वा नपुंसक है इसचिंता को करतेहुये इस आधे श्लोकरूप भागवत को मनमें धारण किया ॥ ५४ ॥

पुनःपुनःकृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा ॥
वटपत्रेशयानःसन्भूच्चिन्तासमन्वितः ॥ ५५ ॥

और उन्हीं में चित्तस्थापन किये वारंवार चित्तसे उच्चारण किया और वटपत्रमें शयनकरते मनमें बड़ीचिंता हुई ॥ ५५ ॥

तदाशान्ताभगवतीप्रादुरासचतुर्भुजा ॥
शङ्खचक्रगदापद्मवरायुधधराशिवे ॥ ५६ ॥

तब चतुर्भुज शांतदेवी प्रगट हुई शंख, चक्र, गदा, पद्म, वरायुध, इनको धारण किये हुये ॥ ५६ ॥

वे सब आयुध धारे अनेक आभरणोंसे युक्त मंदारमालाओं से आकुलित मोतियों के हारसे विराजमान ॥ ६२ ॥

तांदृष्ट्वातांचसंवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवेजले ॥
विस्मयाविष्टहृदयः संबभूवजनार्दनः ॥ ६३ ॥

उस प्रकारसे उनको एकार्णव जल में देखकर जनार्दन बड़े विस्मित होते हुये ॥ ६३ ॥

चिन्तयामाससर्वात्मा दृष्ट्वावैयोतिविस्मितः ॥
कुतोभूताःस्त्रियाःसर्वाः कुतोऽहंवटतल्पगः ॥ ६४ ॥

यह सब स्त्रियां कहां से आईं और मैं कहां से इस वटवृक्ष के निकट आयाहूं ॥ ६४ ॥

अस्मिन्नेकार्णवेघोरे न्यग्रोधःकथमुत्थितः ॥
केनाहंस्थापितोस्म्यत्रशिशुंकृत्वाशुभाकृतिः ॥ ६५ ॥

इस घोर एकार्णव में यह न्यग्रोध (वट) का वृक्ष कहां से आयाहै और फिर मुझ को शिशु करिकै किस ने स्थापित किया है ॥ ६५ ॥

ममेयंजननीनोवामायावाक्वापिदुर्घटा ॥
दर्शनंकेनचित्त्वाद्य दत्तंवा केनहेतुना ॥ ६६ ॥

यह मेरे प्रगटकरनेवाली क्या कोई माया है जिसका भेद नहीं मालूम होता है इस किसी अनिर्वचनीय देवता विशेष ने मुझको किसकारण से दर्शन दिया है ॥ ६६ ॥

किंमयाचात्रवक्तव्यं गन्तव्यंवानवाक्वचित् ॥
मौनमास्थायतिष्ठेयं बालभावादतन्द्रितः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणेप्रथमस्कं
धेश्रीशुकव्यासउपदेशोनाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मैं अब क्या करूं वा यहां से कहीं चला जाऊं अथवा बाल-भाव से अतन्द्रित होकर मौनहोरहाहूं॥ ६७ ॥

इति [illegible]स्कंधेभाषाटीकायां श्रीशुकव्यासोपदेशोनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

व्यास उवाच ॥

दृष्ट्वात्वांविस्मितंदेवं शयानंवटपत्रके ॥
उवाचसस्मितंवाक्यंविष्णोकिंविस्मितोह्यसि ॥१॥

व्यासजी बोले कि वटपत्रमें शयन करते व विस्मित हुये तुम को देखकर हँसती हुई भगवती (देवी) बोली कि हे विष्णो ! क्या तुम विस्मित होरहेहो ॥ १ ॥

[illegible]:प्रभावेण त्वंमां[illegible]वान्पुरा ॥
प्रभवप्रलयेजाते भूत्वाभूत्वापुनःपुनः ॥ २ ॥

महाशक्तिके प्रभावसे तुमने प्रथम (पहिले) मुझे भुलादियाथा अब प्रलय होनेमें तुम वारंवार प्रगट होकर उत्पन्न होतेहो ॥ २॥

निर्गुणासापराशक्तिः सगुणस्त्वंतथाप्यहम् ॥
[illegible]किंविद्धिमामिकाम् ३।

वह पराशक्ति निर्गुण है और तुम व मैं [illegible] और जो सात्त्विकी शक्ति है उसको मेरी शक्ति अर्थात् मुझे जानो ॥ ३ ॥

त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा भविष्यतिप्रजापतिः ॥
सकर्तासर्वलोकस्य र[illegible]न्वितः ॥ ४ ॥

प्रजापति ब्रह्मा तुम्हारी नाभि [illegible] उत्पन्न [illegible] सब लोक के कर्ता (रचयिता) रजोगुण से युक्त हैं ॥ ४ ॥

सतोदातपआस्थाय प्राप्यशक्तिमनुत्तमाम् ॥
रजसारक्तवर्णंच करिष्यतिजगत्त्रयम् ॥ ५ ॥

तब वह तपस्या करकै अनुत्तम शक्ति को प्राप्त होकर रजसे सब जगत् को रक्त वर्ण करैंगे ॥ ५ ॥

सगुणान्पञ्चभूतांश्च समुत्पाद्यमहामतिः ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियेशांश्च मनःपूर्वान्समंततः ॥ ६ ॥

वह महामति सगुण पांच भूतों को उत्पन्न करिकै इन्द्रिय और इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवता और मन का ॥ ६ ॥

करिष्यतिततःसर्गं तेनकर्तासउच्यते ॥
विश्वस्यास्यमहाभाग त्वंचैपालयितातथा ॥ ७ ॥

सर्ग प्रगट करैंगे इसकारण यह कर्ता (ब्रह्मा) कहे जाते हैं हे महाभाग ! तुम इस विश्वके उत्पादक और पालकहो ॥ ७ ॥

तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद्रुद्रोभविष्यति ॥
तपःकृत्वामहाघोरं प्राप्यशक्तिंतुतामसीम् ॥ ८ ॥

तुम्हारे भ्रूमध्यसे क्रोध करने के कारण रुद्र (शिवजी) उत्पन्न होंगे और फिर वे महाघोर तपस्या करिकै तामसी शक्ति को प्राप्त हो करिकै ॥ ८ ॥

कल्पान्तेसोपिसंहर्ता भविष्यतिमहामते ॥
तेनाहंत्वामुपायाता सात्त्विकींत्वमवेहिमाम् ॥ ९ ॥

हे महामते ! कल्पांत में वह भी संहार करनेवाले होंगे इस कारण मैं तुम्हारे पास आप्राप्तहुई हूं तुम मुझको सात्त्वि की शक्ति जानो ॥ ९ ॥

स्थास्येहंत्वत्समीपस्था सदाहंमधुसूदन ॥
हृदयेतेकृतावासा भवामिसततंकिल ॥ १० ॥

हे मधुसूदन ! मैं सदेव तुम्हारे समीप में स्थित हूंगी और

मैं तुम्हारे हृदयमें निवास करतीहुई निरंतर स्थितरहूंभी ॥ १० ॥

विष्णुरुवाच ॥

श्लोकस्यार्धंमयापूर्वं श्रुतंदेविस्फुटाक्षरम् ॥
तत्केनोक्तंवरारोहे रहस्यंपरमंशिव ॥ ११ ॥

विष्णुजी बोले कि हे देवि ! मैंने पूर्वमें स्फुट अक्षर से आधा श्लोक सुना है हे वरारोह ! वह परम शिवदायक रहस्य किस ने कहा है ॥ ११ ॥

तन्मेब्रूहिवरारोहे संशयोयंवरानने ॥
निर्धनोहियथाद्रव्यंतत्स्मरामिपुनःपुनः ॥ १२ ॥

हे वरारोहे ! सो तुम इसको कहो हे वरानने ! मुझको इस बात में बड़ी संदेह है कि जैसे दरिद्री धनको (चिंतवन करता है) इसी प्रकार मैं भी उस आधे श्लोक को वारंवार स्मरण करता हूं ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥

विष्णोस्तद्वचनंश्रुत्वामहालक्ष्मीःस्मितानना ॥
उवाचपरयाप्रीत्यावचनंचारुहासिनी ॥ १३ ॥

व्यासजी बोले कि विष्णु के उस वचनको सुनकर महालक्ष्मी हास्यरूपहोकर जोकि चारुहासिनी हैं वह परम प्रीति से सुंदर वचन बोली ॥ १३ ॥

महालक्ष्मीरुवाच ॥

शृणुशौरेवचोमह्यंसगुणाऽहंचतुर्भुज ॥
मांजानासिनजानासिनिर्गुणःसगुणाव्ययाम् ॥ १४ ॥

महालक्ष्मीजी बोलीं कि हे विष्णुजी ! मेरा यह वचन सुनो हे चतुर्भुज ! मैं सगुणाहूं तुम निर्गुणहो मुझको जानते हो कि नहीं जानते ॥ १४ ॥

त्वंजानीहिमहाभागत्वयातत्प्रकटीकृतम् ॥
पुण्यंभागवतंविद्धिवेदसारंशुभावहम् ॥ १५ ॥
हे महाभाग ! उसको तुमजानो उसनेही सब प्रगट किया है उसको तुम वेदसार शुभदायक पुण्यरूप भागवत जानो ॥ १५ ॥
कृपांचमहतींमन्येदेव्याःशत्रुनिषूदन ॥
ययाप्रोक्तंपरंगुह्यंहितायतवसुव्रत ॥ १६ ॥
हे शत्रुनिषूदन ! मैं देवीकी अपने ऊपर बड़ी कृपा मानतीहूं हे सुव्रत ! जिसने तुम्हारे निमित्त यह परम गुह्य कहाहै ॥ १६ ॥
रक्षणीयंसदाचित्ते नविस्मार्यंकदाचन ॥
सारंहिसर्वशास्त्राणांमहाविद्याप्रकाशितम् ॥ १७॥
मनमें इसको सदा (हमेशा) रक्षा करना चाहिये और इस को कभी भूलना न चाहिये महाविद्या ने सब शास्त्रों का सार प्रकाशित किया है ॥१७॥
नातःपरंवेदितव्यं वर्ततेभुवनत्रये ॥
प्रियोसिखलुदेव्यास्त्वंतेनतेव्याहृतंवचः॥ १८ ॥
इससे अधिक त्रिलोकी में और कुछ जानने योग्य नहीं है तुम देवी के प्यारे हो इससे देवी ने तुम्हारे प्रति ऐसा वचन कहा है ॥ १८ ॥

सूत उवाच ॥

इतिश्रुत्वावचोदेव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः ॥
दधारहृदयेनित्यंमत्वामन्त्रमनुत्तमम्॥ १९ ॥
व्यासजी बोले कि इस प्रकार महालक्ष्मी देवी के वचन को सुनकर भगवान् ने उस मंत्र को मानकर हृदय में धारण किया ॥ १९ ॥
कालेनकियतादेवस्तस्यनाभिकमलोद्भवः ॥
ब्रह्मादैत्यभयाद्त्रस्तोजगामशरणंहरेः ॥ २० ॥

कुछ समय के बाद उन (भगवान्) की नाभिकमल से उत्पन्न हुये ब्रह्माजी दैत्यों (मधुकैटभ) के भयसे व्याकुल होकर भगवान् (विष्णु) की शरण को प्राप्त हुये ॥ २० ॥

ततःकृत्वामहायुद्धंहत्वातौमधुकैटभौ ॥
जजापभगवान्विष्णुःश्लोकार्धंविशदाक्षरम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुजी महायुद्ध (५०००) कर उन २ मधुकैटभ दैत्यों को मारकर उसी आधे श्लोक को जपकरने लगे ॥ २१ ॥

जपन्तंवासुदेवंच दृष्ट्वादेवःप्रजापतिः ॥
पप्रच्छपरमप्रीतःकञ्जजःकमलापतिम् ॥ २२ ॥

कमल से उपजे प्रजापति ब्रह्माजी वासुदेव (भगवान्) को जप करता हुआ देखकर परम प्रसन्न होकर कमलापति (विष्णुजी) से पूंछने लगे ॥ २२ ॥

किंत्वंजपसिदेवेशत्वत्तःकोप्याधिकोस्तिवै ॥
[illegible] ॥ २३ ॥

हे देवेश ! तुम क्या जपते हो क्या आप से भी अधिक कोई है हे पुंडरीकाक्ष, जगदीश्वर ! जिसको स्मरण कर तुम प्रसन्न होते हो ॥ २३ ॥

हरिरुवाच ॥

मयित्वयिचयाशक्तिःक्रियाकारणलक्षणा ॥
विचारयमहाभागसासाभगवतीशिवा ॥ २४ ॥

हरि भगवान् बोले कि मुझमें और तुममें जो क्रियाकारण लक्षण वाली शक्ति है हे महाभाग ! उसका विचार करो वही भगवती शिवा है ॥ २४ ॥

यस्याऽधारेजगत्सर्वंतिष्ठत्यन्नमहार्णवे ॥

साकारायामहाशक्तिरमेयाचसनातनी ॥ २५ ॥

जिसके आधार में सब जगत् इस महार्णव में स्थित हैं वह साकारा महाशक्ति अमेया और सनातनी है ॥ २५ ॥

ययाविसृज्यतेविश्वंजगदेतच्चराचरम् ॥
सैषाप्रसन्नावरदानृणांभवतिमुक्तये ॥ २६ ॥

जिसके द्वारा यह चराचर जगत् विसृजन कियाजाता है वही (भगवती) प्रसन्न होकर सब मनुष्यों की मुक्ति के निमित्त वरदायिनी होती है ॥ २६ ॥

साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूतासनातनी ॥
संसारबन्धहेतुश्चसैवसर्वेश्वरेश्वरी ॥ २७ ॥

वही परमाविद्या मुक्ति की हेतुभूत सनातनी है और संसार की बंधहेतु सर्वेश्वरी भी वही है ॥ २७ ॥

अहंत्वमखिलंविश्वंतस्याश्चिच्छक्तिसंभवम् ॥
विद्धिब्रह्मन्नसन्देहःकर्तव्यःसर्वदाऽनघ ॥ २८ ॥

और मैं तुम व यह संपूर्ण विश्व उसकी चित्शक्ति से उत्पन्न है हे ब्रह्मन , हे पापरहित ! इसको इस प्रकार से जानो इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ॥ २८ ॥

श्लोकार्द्धेनतयाप्रोक्तंतद्वैभागवतंकिल ॥
विस्तरोभवितातस्यद्वापरादौयुगेतथा ॥ २९ ॥

उसीने जो आधे श्लोक में मुझसे भागवत कहा है जोकि द्वापरादि युगमें उसका व्यासद्वारा विस्तार होगा ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ॥

ब्रह्मणासंगृहीतंचविष्णोस्तुनाभिपङ्कजे ॥
नारदायचतेनोक्तंपुत्रायामितबुद्धये ॥ ३० ॥

व्यासजी बोले कि नारायण भगवान्‌की नाभि कमल से

उत्पन्नहुये ब्रह्मासे विष्णुजीने उस भागवतको कहा उन्होंने महा बुद्धिमान् पुत्र नारदजी से कहा ॥ ३० ॥

नारदेनतथामह्यंदत्तंहिमुनिनापुरा ॥
मयाकृतमिदंपूर्णंद्वादशस्कन्धविस्तरम् ॥ ३१ ॥

हे पुत्र, शुकदेव! पुरातन समय नारदमहर्षि ने मुझे सुनाया और मैंने फिर इसको द्वादश (१२) स्कन्ध में विस्तार कर पूर्ण किया है ॥ ३१ ॥

तत्पठस्वमहाभागपुराणंब्रह्मसम्मितम् ॥
पञ्चलक्षणयुक्तंचदेव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

हे महाभाग! आप उस ब्रह्मसम्मित पुराण का पाठकरो यह पांचलक्षण युक्त देवीजी का उत्तम चरित्र है॥ ३२ ॥

तत्त्वज्ञानरसोपेतंसर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥
धर्मशास्त्रसमंपुण्यंवेदार्थेनोपबृंहितम् ॥ ३३ ॥

यह तत्त्वज्ञानके रससे युक्त सबके निमित्त उत्तमोत्तम धर्म शास्त्रकी समान पुण्य वेदार्थ से संयुक्त ॥ ३३ ॥

वृत्रासुरवधोपेतंनानाख्यानकथायुतम् ॥
ब्रह्मविद्यानिधानंतुसंसारार्णवतारकम् ॥ ३४ ॥

वृत्रासुरके वध से युक्त अनेक व्याख्यान कथाओंसे व्याप्त ब्रह्म विद्याका निधान होकर संसार सागर का तारनेवाला है॥ ३४॥

गृहाणत्वंमहाभाग योग्योसिमतिमत्तर ॥
पुण्यंभागवतंनाम पुराणंपुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥

हे महाभाग, मतिमन्! तुम इसको ग्रहण करो कारण कि, तुम इसके योग्यहो हे पुरुषश्रेष्ठ, बुद्धिमत्तर! यह पवित्र पुण्यरूप भागवत नाम पुराण है ॥ ३५ ॥

अष्टादशसहस्राणां श्लोकानांकुरुसङ्ग्रहम् ॥
अज्ञाननाशनंदिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम् ॥ ३६ ॥

अठारह सहस्र (१८०००) श्लोकों का संग्रह करो जोकि अज्ञाननाशक दिव्यरूप होकर ज्ञानरूपी सूर्यका बोधकहै ॥ ३६ ॥

सुखदंशान्तिदंधन्यं दीर्घायुष्यकरंशिवम् ॥
शृण्वतांपठतांचेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ ३७ ॥

सुखदायक और शांतिदायक धन्यरूप दीर्घायुष्य का करने वाला होकर सुनने पढ़नेवालों को पुत्र, पौत्र का बढ़ानेवाली है ॥ ३७ ॥

शिष्योऽयंममधर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः ॥
पठिष्यतित्वयासार्द्धं पुराणींसंहितांशुभाम्॥ ३८ ॥

और लोमहर्षण का पुत्र यह धर्मात्मा मेरा शिष्य तुम्हारे साथ इस पौराणिक शुभ संहिता का पाठ करैगा ॥ ३८ ॥

सूतउवाच ॥

इत्युक्तेतेनपुत्राय मह्यंचकथितंकिल ॥
मयागृहीतंतत्सर्वं पुराणंचातिविस्तरम् ॥ ३९ ॥

सूतजी बोले कि जब व्यासजी ने मुझसे और शुकदेव से ऐसा कहा तब मैंने अति विस्तार वाले उस संपूर्ण पुराण को ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

शुकोऽधीत्यपुराणंतु स्थितोव्यासाश्रमेशुभे ॥
नलेभेशर्मकर्मात्मा ब्रह्मात्मजइवापरः ॥ ४० ॥

शुक भी इस पुराण को ग्रहणकर व्यासजी के आश्रम में रहे और भागवतमें प्रतिपादि अर्थ संन्यासाश्रम के विना स्वीकार किये चित्त विक्षेपादि द्वारा अनुभव होने को समर्थ नहीं है सो किसप्रकारसे संन्यासाश्रम पूर्वक वह तत्त्व मुझको प्राप्तहो ऐसी चिंता करतेहुये शर्म (सुख) को न प्राप्तहुये जिसप्रकार से ब्रह्मपुत्र ॥ ४० ॥

एकान्तसेवीविकलः सशून्यइवलक्ष्यते ॥

नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा ॥ ४१ ॥

और वह एकांतसे भी विकल शून्यसे लक्षित होतेथे न अति भोजन और न उपवास में प्रीति करते थे ॥ ४१ ॥

चिन्ताविष्टंसुतंदृष्ट्वा व्यासःप्राहसुतंप्रति ॥
किंपुत्रचिन्त्यतेनित्यं [illegible] मानद ॥४२॥

इसप्रकार पुत्रको चिंतित देखकर व्यासजी बोले कि हे मानद, पुत्र ! तुम नित्य (सदा) क्या सोचते रहतेहो और क्यों व्यग्रहो ॥ ४२ ॥

आस्तेध्यानपरोनित्यमृणग्रस्तइवाधनः ॥
[illegible] मयिस्थितेपुत्र [illegible] ॥ ४३ ॥

अधन जैसे ऋणग्रस्तहोने से चिंता करता है इसप्रकार से नित्य ध्यान में तत्पर रहतेहो हे पुत्र ! मेरे रहते तुम क्या चिंता करतेहो ॥ ४३ ॥

सुखंभुङ्क्ष्वयथाकामं मुञ्चशोकंमनोगतम् ॥
[illegible] च मतिंकुरु ॥ ४४ ॥

यथाकाम सुखको भोगो व शोक को त्यागन करो शास्त्रोक्त ज्ञान का [illegible] व विज्ञान में मति करो ॥ ४४ ॥

[illegible] सुव्रत ॥
गच्छत्वंमिथिलांपुत्र पालितांजनकेनह ॥ ४५ ॥

हे सुव्रत ! जो मेरे वचन से तुम्हारे मनमें शांति न आतीहो तो हे पुत्र ! तुम जनकपालित मिथिला नगरी (पुरी) को गमन करो ॥ ४५ ॥

सतेमोहंमहाभाग नाशयिष्यतिभूपतिः ॥
जनकोनामधर्मात्मा विदेहःसत्यसागरः ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! वह राजा तुम्हारे मोह का नाश करैगा वह जनक नाम विदेह सत्यसागर होकर बड़े धर्मात्मा हैं ॥ ४६ ॥

तंगत्वानृपतिंपुत्र सन्देहंस्वंनिवर्तय ॥
वर्णाश्रमाणांधर्मास्त्वंपृच्छपुत्रयथातथम् ॥ ४७ ॥

हे पुत्र ! उस राजा के पास जाकर अपना संदेह निवृत्त करो हे पुत्र ! उनसे यथा योग्य वर्णाश्रमों के धर्म पूंछो ॥ ४७ ॥

जीवन्मुक्तःसराजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिःशुचिः ॥
तथ्यवक्तातिशान्तश्चयोगीयोगप्रियःसदा ॥ ४८ ॥

वह राजर्षि जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञान में मतिवाला शुचि यथार्थ वक्ता शांत योगी सदा योगप्रिय है ॥ ४८ ॥

सूतउवाच ॥

तच्छ्रुत्वावचनंतस्य व्यासस्यामिततेजसः ॥
प्रत्युवाचमहातेजः शुकश्चारणिसम्भवः ॥ ४९ ॥

सूतजी बोले कि महातेजस्वी उन व्यासजीके उस वचन को सुनकर अरणीसंभव महातेजस्वी शुकदेवजी बोले ॥ ४९ ॥

दम्भोयंकिलधर्मात्मन्भातिचित्तेममाधुना ॥
जीवन्मुक्तोविदेहश्चराज्यंशास्तिमुदान्वितः ॥ ५० ॥

हे धर्मात्मन् ! इस समय मेरे चित्तमें यह वार्ता दंभरूप भासती है विदेह कैसे जीवन्मुक्त हैं जोकि हर्षित होकर राज्य का शासन करते हैं ॥ ५० ॥

बन्ध्यापुत्रइवाभाति राजासौजनकःपितः ॥
कुर्वन्राज्यंविदेहः किंसन्देहोयममाद्भुतः ॥ ५१ ॥

हे पिता ! यह जनक राजा बंध्या पुत्रके समान भासता है ब्रह्मज्ञानी होकर विदेह कैसे राज्य करताहै यह मुझको बड़ाही संदेह है ॥ ५१ ॥

द्रष्टुमिच्छाम्यहंभूपंविदेहंनृपसत्तमम् ॥
कथंतिष्ठतिसंसारेपद्मपत्रमिवाम्भसि ॥ ५२ ॥

राजश्रेष्ठ विदेह राजा के देखने की मैं इच्छा करताहूं जलमें पद्मपत्र के समान वह इस संसार में कैसे स्थित है ॥ ५२ ॥

सन्देहोयंमहांस्तातविदेहेपरिवर्तते ॥
मोक्षःकिंवदतांश्रेष्ठसौगतानामिवापरः ॥ ५३ ॥

हे तात! विदेह पर मेरा यह बड़ा संदेह है हे तात! क्या वह सौगत (नास्तिकों)के समान देहपात को जैसे वे मोक्ष मानते हैं चार्वाकादि तद्वत् वह राज्य भोग में सुखीहुये यावज्जीवन सुखानुभव करतेहुये जीवन्मुक्त हैं ॥ ५३ ॥

कथंभुक्तमभुक्तंस्यादकृतंचकृतंकथम् ॥
व्यवहारःकथंत्याज्यइन्द्रियाणांमहामते ॥ ५४ ॥

भुक्त अभुक्त कैसे होसक्ता है कृत अकृत कैसे होसक्ता है हे महामते! इंद्रियों का व्यवहार कैसे त्याग होसक्ता है ५४ ॥

मातापुत्रस्तथाभार्याभगिनीकुलटातथा ॥
भेदाभेदःकथंनस्याद्यद्येतन्मुक्तताकथम् ॥ ५५ ॥

माता, पुत्र, भार्या, (स्त्री) भगिनी, (बहिन) व्यभिचारिणी इनमें भेदाभेद किस प्रकार से नहीं होसक्ता है और जो इनमें भेदाभेद भी होवे तो कैसे मुक्ति होसक्ती है ॥ ५५॥

कटुक्षारंतथातीक्ष्णंकषायंमिष्टमेवच ॥
रसनायद्विजानातिभुङ्क्तेभोगाननुत्तमान् ॥ ५६ ॥

कड़ुवा, खारा, तीखा, कसैला, मीठा, यह जिसकी जिह्वा जानतीहै और श्रेष्ठ भोगों को भोगती है ॥ ५६ ॥

शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानंयदाभवेत् ॥
[illegible]म् ॥ ५७ ॥

शीत, उष्ण, सुख, दुःखादिका जब विज्ञान होता है तौ हे पिताजी ! फिर मुक्तता कैसी यह तौ मुझे बड़ा संदेह है ॥ ५७ ॥

शत्रुमित्रपरिज्ञानंवैरंप्रीतिकरंसदा ॥
व्यवहारेपरेतिष्ठन्कथंनकुरुतेनृपः ॥ ५८ ॥

शत्रु मित्र का परिज्ञान सदा वैर और प्रीति का करनेवाला है फिर क्या राजा इनके व्यवहार में स्थित नहीं होते ॥ ५८ ॥

चौरंवातापसंवापिसमानंमन्यतेकथम् ॥
[illegible] ॥ ५९ ॥

चौर और तपस्वी को वह किस प्रकार समान मानते हैं और जो असमान बुद्धि हो तौ हे तात ! फिर मुक्तता कैसी होसक्ती है ॥ ५९ ॥

दृष्टपूर्वो[illegible]भूपतिः ॥
[illegible]तीतातगृहेमुक्तःकथंनृपः ॥ ६० ॥

हम ने तौ कोई पहिले जीवन्मुक्त राजा नहीं देखा हे तात ! यह मुझको बड़ी शंका है कि राजा घरमें स्थित हुआ कैसे मुक्त है ॥ ६० ॥

[illegible] ॥
[illegible] ॥ ६१ ॥

इति श्री[illegible]व्यासोपदेशे श्रीशुकमिथिलापुरी[illegible]पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

---

१ [illegible] प्रथम से राजा जनकजी के विषय में शंका किया कि राज्य करते कैसे मुक्त होसक्ता है जिनको इतनी शंका प्रथम से ही है तो फिर कैसे राजा परिक्षित को मोक्ष दिया सर्पने काटाही था जो दशा सर्प के काटने पर होती है सो जरूरही भई होगी इसमें शंका नहीं है ॥

उस राजा के गुण श्रवण कर मेरी बहुत देखनेकी इच्छा हुई है संदेह निवृत्ति के निमित्त मिथिलापुरी को मैं जाताहूं ॥ ६१ ॥

इति श्रीमात्राभागवतमहापुराणेप्रथमस्कंधेभाषाटीकायांव्यासोपदेशेश्रीशुकामिथिलापुरीगमनंनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

सूत उवाच ॥

इत्युक्त्वापितरंपुत्रःपादयोःपतितःशुकः ॥
[illegible]कामोमहामनाः ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि इसप्रकार कहकर शुकदेवजी अपने पिता के चरणों को प्रणामकर और हाथजोड़कर वह महात्मा जाने की इच्छासे बोले कि ॥ १ ॥

आपृच्छेत्वांमहाभाग [illegible] ॥
विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालितांजनकेनतु ॥ २ ॥

हे महाभाग ! आप से जाने को मैं पूंछताहूं और जनक से पालित विदेहों के पास जानेकी इच्छा करताहूं ॥ २ ॥

विनादण्डंकथंराज्यंकरोतिजनकःकिल ॥
[illegible] ॥ ३ ॥

कि जनकजी किसप्रकारसे विना दंडके राज्य करते होंगे जो दंड न हो तौ लोक (प्रजा) धर्म में नहीं वर्तसक्ता ॥ ३ ॥

[illegible]हितःसदा ॥
[illegible]योंयंमहान्मम ॥ ४ ॥

धर्म का कारण दंडही है ऐसा मनुआदि ने पहिलेही से

कह रक्खा है हे तात ! वह कैसे वर्तता है यह मुझे बड़ा संदेह है ॥ ४ ॥

ममातात्वियंवन्ध्यातद्वद्भातिविचेष्टितम् ॥
पृच्छामित्वांमहाभागगच्छामिचपरन्तपः ॥ ५ ॥

यह मेरी माता वंध्या है यह चेष्टा तो ऐसी विदित होती है हे महाभाग ! आपसे पूंछकर मैं जाताहूं ॥ ५ ॥

सूत उवाच ॥

तंदृष्ट्वागन्तुकामंचशुकंसत्यवतीसुतः ॥
आलिङ्ग्योवाचपुत्रंतंज्ञानिनंनिःस्पृहंदृढम् ॥ ६ ॥

सूत जी वोले कि हे व्यासजी ! शुकदेव को जाने में तत्पर देखकर आलिंगन करके निःस्पृह ज्ञानी दृढ़ से वोले ॥ ६ ॥

व्यास उवाच ॥

स्वस्त्यस्तुशुकदीर्घायुर्भवपुत्रमहामते ॥
सत्यांवाचंप्रदत्त्वामेगच्छतातयथासुखम् ॥ ७ ॥

व्यासजी वोले कि हे शुकदेवजी ! तुम्हारा मंगल हो हे महामते ! तुम दीर्घायुहो हे तात ! मुझे सत्यवाणी देकर याने (फिर आऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा देकर) सुखपूर्वक जावो ॥ ७ ॥

आगन्तव्यंपुनर्गत्वाममाश्रममनुत्तमम् ॥
नकुत्रापिचगन्तव्यंत्वयापुत्रकथंचन ॥ ८ ॥

और जाकर वहांसे हमारे उत्तम आश्रम(स्थान)में फिर आओ हे पुत्र ! तुम को किसी प्रकार कहीं भी न जाना चाहिये ॥ ८ ॥

सुखंजीवाम्यहंपुत्रदृष्ट्वातेमुखपङ्कजम् ॥
अपश्यन्दुःखमाप्नोमिप्राणस्त्वमसिमेसुत ॥ ९ ॥

हे पुत्र ! मैं तुम्हारे मुखकमल को देखकर सुख से जीने

की इच्छा करताहूं हे पुत्र ! तुम्हारे देखेविना मेरे प्राण दुःखी होते हैं ॥ ९ ॥

दृष्ट्वात्वंजनकंपुत्रसन्देहंविनिवर्त्यच ॥
अत्राऽगत्यसुखंतिष्ठवेदाध्ययनतत्परः ॥ १० ॥

हे पुत्र ! जनकको देखकर और संदेह को निवृत्त करिकै यहां आकर वेदाध्ययन करते हुये तुम सुख से स्थित रहो ॥ १० ॥

सूत उवाच ॥

इत्युक्तःसाभिवाद्यार्यंकृत्वाचैवप्रदक्षिणाम् ॥
चलितस्तरसातीवधनुर्मुक्तःशरोयथा ॥ ११ ॥

सूतजी बोले कि ऐसा कहने पर प्रणाम करके और प्रदक्षिणा करके धनुष से छूटे बाणकी समान शुकदेव जी वेग से गमन करने लगे ॥ ११ ॥

संपश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्चवित्तधर्मिणः ॥
वनानिपादपांश्चैव क्षेत्राणिफलितानि च ॥ १२ ॥

अनेक देश और वित्त धर्मी लोकोंको देखते व वन, वृक्ष, फलते हुये क्षेत्रों को देखते ॥ १२ ॥

तापसांस्तप्यमानांश्चयाजकान्दीक्षयान्वितान् ॥
योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान्वनौकसः ॥ १३ ॥

तप करते हुये तपस्वी और दीक्षा में युक्त याजकोंको योगाभ्यास में रत योगी और वनवासी वानप्रस्थों को देखते हुये ॥ १३ ॥

शैवान्पाशुपतांश्चैवसौराञ्छाक्तांश्चवैष्णवान् ॥
वीक्ष्यनानाविधान्धर्माञ्जगामातिस्मयन्मुनिः १४॥

शैव, पाशुपत, शाक्त और वैष्णव इन अनेक धर्मवालों को देखकर अत्यन्त मुस्क्याते हुए मुनिजी गमन करनेलगे ॥ १४ ॥

वर्षद्वयेनमेरुंचसमुल्लङ्घ्यमहामतिः ॥
हिमाचलंचवर्षेणजगाममिथिलांप्रति ॥ १५ ॥

वह महामति दो वर्षमें मेरु (पर्वत) का उल्लंघन करके और एक वर्षमें हिमाचलका उल्लंघन करके मिथिला के प्रति प्राप्त हुये ॥ १५ ॥

प्रविष्टोमिथिलांमध्येपश्यन्वैऋद्धिमुत्तमाम् ॥
प्रजाश्चसुखिताःसर्वाःसदाचाराःसुसंस्थिताः १६॥

मिथिलामें प्रवेश करके उत्तम ऋद्धिको देखतेहुये जहांकी प्रजा सब सुखी सदाचारसे संपन्न थी ॥ १६ ॥

क्षत्त्रानिवारितस्तत्रकस्त्वमत्रसमागतः ॥
किंतेकार्यंवदस्वेतिपृष्टस्तेननचाऽब्रवीत् ॥ १७ ॥

वहां द्वारपालने इनको निवारण किया कि तुम कौनहो और कहांसे आयेहो और क्या तुम्हारा कार्य है ऐसा पूंछने पर इन्हों (श्रीशुकदेवजी) ने कुछ उत्तर न दिया ॥ १७ ॥

निःसृत्यनगरद्वारात्स्थितःस्थाणुरिवाचलः ॥
विस्मितोऽसौस्मितंकृत्वानोवाचकिंचन ॥ १८॥

और नगरके द्वार देशमें [illegible]के मार्गको छोड़ स्थाणु के समान अचल विस्मित हंसते हुये स्थितरहे और कुछ न बोले ॥ १८ ॥

प्रतीहार उवाच ॥

ब्रूहिमूकोसिकिंब्रह्मन्किमर्थंचासिह्यागतः ॥
चलनंचविनाकार्यंनभवेदितिमेमतिः ॥ १९ ॥

प्रतीहारने कहा कि हे ब्रह्मन् ! कहिये आप क्यों मूक (चुप)

हैं क्यों इस स्थानपर आयेहो विना कार्य कोई चलता नहीं है ऐसा हमारे समझमें है ॥ १९ ॥

राजाज्ञयाप्रवेशोस्मिन्नगरेस्मिन्महाद्विज ॥
अज्ञातकुलशीलस्यप्रवेशोनात्रसर्वथा ॥ २० ॥

हेब्राह्मण ! इस नगरमें राजाकी आज्ञासेही प्रवेशकरना होता है विना कुलशील जाने यहांपर प्रवेश सर्वथा नहीं होताहै ॥ २० ॥

तेजस्वीभासिनूनंत्वंब्राह्मणोवेदवित्तमः ॥
कुलंकार्यंचमेब्रूहिप्रवेशंगच्छमानद ॥ २१ ॥

तुम अवश्य कोई वेदज्ञाता तेजस्वी ब्राह्मण विदित होतेहो इससे हे मानद ! मुझ से कुल और कार्य कहकर अवश्य चले जाइये ॥ २१ ॥

शुक उवाच ॥

यदर्थमागतोस्म्यत्रतन्मयाधिगतंवचनात्तव ॥
विदेहनगरंद्रष्टुंप्रवेशोऽत्रसुदुर्लभः ॥ २२ ॥

शुकदेवजी बोले कि, मैं जिस निमित्त आयाथा सो तुम्हारे वचन सेही प्राप्त होगया (अर्थात् राजा ज्ञानी है) कि हम सरीखोंका भी देखने के लिये विदेह नगरमें प्रवेशहोना दुर्लभ है ॥ २२ ॥

मोहोऽयंममदुर्बुद्धेर्यदुल्लंघ्यगिरिद्वयम् ॥
राजानंद्रष्टुकामोहंपर्यटन्समुपागतः ॥ २३ ॥

यह मेरी दुर्बुद्धिका मोहथा कि जो दो पर्वतोंका अतिक्रमण करके राजाके देखनेकी इच्छासे पर्यटन करता हुआ यहां पर मैं आयाहूं ॥ २३ ॥

वञ्चितोहंस्वयंपित्राद्दूषणंकस्यदीयते ॥
भ्रमितोहंमहाजालेऽभ्रमणान्महीतले ॥ २४ ॥

हमारे पिताजीने राजाको ज्ञानी कहकर मुझको वंचित (भ्रमाया) किया इसमें किसको दोष देवें हे महाभाग ! कर्मसेही हम पृथ्वी में भ्रमण करते हैं ॥ २४

धनाशापुरुषस्येहपरिभ्रमणकारणम् ॥
सामेनास्तितथाप्यत्रसंप्राप्तोस्मिभ्रमात्किल ॥२५॥

पुरुषको धनकी आशाही भ्रमण कराती है सो मुझको यह भी नहीं है तौभी मैं भ्रमसे यहां प्राप्त होगयाथा ॥ २५ ॥

निराशस्यसुखंनित्यंयदिमोहे न मज्जति ॥
निराशोहंमहाभागमग्नोस्मिन्मोहसागरे ॥ २६ ॥

यदि मोहमें माज्जित नहो तो निराशावालेको नित्य सुख है हे महाभाग! मैं निराश होकर भी मोहसागरमैंमग्नहोताहूं॥२६॥

क्वमेरुर्मिथिलाक्वेयंपद्भ्यांचसमुपागतः ॥
परिश्रमफलंकिंमेवञ्चितोविधिनाकिल ॥ २७ ॥

कहां मेरु ? कहां मिथिला ? और पैरों से आना और फिर मेरे भ्रमण का क्या फल है निश्चय विधाता ने मुझे वंचित कियाहै ॥ २७ ॥

प्रारब्धंकिलभोक्तव्यंशुभंवाप्यथवाशुभम् ॥
उद्यमस्तद्वशोनित्यंकारयत्येवसर्वथा ॥ २८ ॥

शुभ वा अशुभ प्रारब्धभोगनाही पड़ता है यह प्रारब्धका भोगहै उद्यम उसीके वशमेंहै जो अपने अधीन करताहै ॥ २८ ॥

नतीर्थंनचवेदोत्रयदर्थमिहमेश्रमः ॥
अप्रवेशःपुरेजातोविदेहोनामभूपतिः ॥ २९ ॥

यहां तीर्थ और वेद भी नहीं है जिनके निमित्त मेरा श्रम होता विदेह राजाके तो पुरमें प्रवेशाही नहीं होता अर्थात् जहां राजा रहताहै वहां प्रवेशही नहीं ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वाविरराम्राशुमौनीभूतइवास्थितः ॥
ज्ञातोहिप्रतिहारेणज्ञानी कश्चिद्द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥

ऐसाकहकर शुकदेवमौनहो विरामको प्राप्तहुये व प्रतीहार ने भी जाना कि यह कोई ब्राह्मणश्रेष्ठ ज्ञानी है ॥ ३० ॥

सामपूर्वमुवाचासौतंक्षत्तासंस्थितंमुनिम् ॥
गच्छभोयत्रतेकार्यंयथेष्टंद्विजसत्तम ॥ ३१ ॥
अपराधोममब्रह्मन्यन्निवारितवानहम् ॥
तत्क्षन्तव्यंमहाभागविमुक्तानांक्षमाबलम् ॥ ३२ ॥

तब द्वारपाल मुनिसे सामपूर्वक कहनेलगा कि हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! जहांपर तुम्हारा कार्यहो वहांही यथेष्टगमन करो हे ब्राह्मण ! जो मैंने आपको निवारण (रोकयो) कियाथा सो हे महाराज ! मेरा अपराध है हे महाभाग ! वह क्षमा कीजिये विमुक्तों का क्षमा ही का बल है ॥ ३१ । ३२ ॥

शुक उवाच ॥

किंतेत्रदूषणंक्षत्तःपरतन्त्रोसिसर्वदा ॥
प्रभुकार्यंप्रकर्तव्यंसेवकेनचधोचितम् ॥ ३३ ॥

शुकदेवजी बोले कि हे द्वारपाल ! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है तुमतो सदा परतंत्रहो सेवकको यथोचित प्रभुका कार्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥

नभूपदूषणंचात्रयदहंरक्षितस्त्वया ॥
चोरशत्रुपरिज्ञानंकर्तव्यंसर्वथाबुधैः ॥ ३४ ॥

जो तुमने मुझे रोका इसमें राजाकाभी दोष नहीं है कारण कि पंडितको चोर व शत्रुका ज्ञान सर्वथा करना चाहिये ॥ ३४ ॥

ममैवसर्वथादोषोयदहंसमुपागतः ॥
गमनंपरगेहेयल्लघुताचाइचकारणम् ॥ ३५ ॥

और मेराही सर्वथा दोष है जो मैं यहांपर आयाहूं क्योंकि लिखाहै कि " परघर कबहुँन जाइये गये घटतहै जोत । रवि मंडलमें जात शशि छीनकलाछवि होत ॥ „ जो दूसरे के घर में गमन करता है वही लघुताका कारण होता है ॥ ३५ ॥

प्रतीहार उवाच ॥

किंसुखंद्विजकिंदुःखंकिंकार्यंशुभमिच्छता ॥
कःशत्रुर्हितकर्ताकोब्रूहिसर्वंममाग्रतः ॥ ३६ ॥

प्रतीहार बोला कि हे द्विज ! दुःख क्या वस्तुहै और सुख क्या वस्तुहै शुभकी इच्छावालेको क्या कार्य होताहै और कौन शत्रु और कौन हितका कर्ता है यह सब हमसे कहिये ॥ ३६ ॥

शुक उवाच ॥

द्वैविध्यंसर्वलोकेषुसर्वत्र द्विविधोजनः ॥
रागीचैवविरागीचतयोश्चित्तंद्विधापुनः ॥ ३७ ॥

शुकदेवजी बोले कि सब लोकों (संसार) में दोही प्रकारके मनुष्य होते हैं पहिला रागी और दूसरा विरागी और उनका चित्तभी दोप्रकारका होताहै ॥ ३७ ॥

विरागीत्रिविधःकामं ज्ञाताज्ञातश्चमध्यमः ॥
रागीचद्विविधःप्रोक्तोमूर्खश्चचतुरस्तथा ॥ ३८ ॥

विरागीभी तीनप्रकारके होतेहैं, पहिला ज्ञाता, और दूसरा अज्ञात, तीसरा मध्यम, और रागी दो प्रकारके हैं प्रथम मूर्ख और द्वितीय चतुर होताहै ॥ ३८ ॥

चातुर्यंद्विविधंप्रोक्तंशास्त्रतोमतितस्तथा ॥
मतिस्तुद्विविधाप्रोक्तायुक्तायुक्तविभेदतः ॥ ३९ ॥

फिर चतुरता दोप्रकारकी शास्त्र और मतिसे उत्पन्न होतीहै युक्त अयुक्तके भेदसे दोप्रकारकी मति होती है ॥ ३९ ॥

प्रतीहार उवाच ॥

यदुक्तंभवताविद्वन्नार्थज्ञोहं द्विजोत्तम ॥
तत्सर्वंविस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम ॥ ४० ॥

यह सुनकर प्रतीहारने कहा कि हे भगवन्! जो कुछ आपने कहा सोतो मैंने उसको बिलकुल नहीं समझा आप वह सब विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४० ॥

शुक उवाच ॥

रागोयस्यास्तिसंसारेसरागीत्युच्यतेध्रुवम् ॥
दुःखंबहुविधं तस्यसुखं च विविधंपुनः ॥ ४१ ॥

शुकदेवजी बोले कि जिसको संसारमें प्रेम है वह रागी कहाता है उसको अनेकप्रकारका सुख दुःख होताहै ॥ ४१ ॥

धनंप्राप्यसुतान्दारान्मानंचविजयंतथा ॥
तदप्राप्यमहद्दुःखं भवत्येवक्षणेक्षणे ॥ ४२ ॥

धन सुत दारा मान विजयको प्राप्तहोकर सुख और इसके अभावमें अनेक दुःख होते हैं ॥ ४२ ॥

कार्यंतस्यसुखोपायःकर्तव्यंतुयथाभवेत् ॥
तस्याराातिःसविज्ञेयःसुखविघ्नंकरोतियः ॥ ४३ ॥

जिस प्रकारसे प्राणीको यथार्थ सुख उत्पन्न हो वही उपाय करना चाहिये और जो सुखमें विघ्न करै वही उसका शत्रु जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

सुखोपायविनाविप्रोरागयुक्तस्यनैवहि ॥
चतुरोनैवमुह्येतमूर्खःसर्वत्रमुह्यति ॥ ४४ ॥

रागयुक्तको भी मित्र सुखदाता है इसमें शास्त्र के अवलोकन से ज्ञानको प्राप्तहुवा चतुर मोहको प्राप्तनहीं होता और मूर्ख सर्वत्र मोहको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

विरक्तस्याऽऽत्मरक्तस्यसुखमेकान्तसेवनम् ॥
आत्मानुचिन्तनंचैववेदान्तस्यचचिन्तनम् ॥४५॥

विरक्त और आत्मामें रक्तको एकांतसेवनही सुखहै आत्मा और वेदांतका चिंतन करनाही उसको सुखदायक होताहै ॥४५॥

दुःखंतदेतत्सर्वंहिसंसारकथनादिकम् ॥
शत्रवोबहवस्तस्यविज्ञस्यशुभमिच्छतः ॥ ४६ ॥

और यह संसार का कथनादि संपूर्ण दुःखरूप है और शुभ की इच्छा करनेवाले विज्ञानीके बहुतसे शत्रु होतेहैं ॥ ४६॥

कामःक्रोधःप्रमादश्च शत्रवोविविधाःस्मृताः ॥
बन्धुःसन्तोषएवास्य नान्योऽस्तिभुवनत्रये ॥ ४७ ॥

काम क्रोध और प्रमाद ये अनेकप्रकारके शत्रुहैं इसमें संतोष-रूपी बंधुके समान कोई त्रिलोकी में नहींहै ॥ ४७॥

सूत उवाच ॥

तच्छ्रुत्वावचनंतस्य मत्वातंज्ञानिनंद्विजम् ॥
क्षत्ताप्रवेशयामास कक्षांचातिमनोरमाम् ॥ ४८ ॥

सूतजी बोले ये उनके वचन सुन और उनको ज्ञानी ब्राह्मण मानकर द्वारपालने मनोरम कक्षा (मार्ग) से उनका प्रवेश कराया ॥ ४८ ॥

नगरंवीक्ष्यमाणःसंस्त्रैविध्यजनसंकुलम् ॥
नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम् ॥ ४९ ॥

वे त्रिविधजनोंसे संकुल नगरको देखतेहुये कि जहांपर अनेक द्रव्य व्यापार से भरे बाजार क्रय विक्रयसे संयुक्त ॥ ४९ ॥

रागद्वेषयुतंकामलोभमोहाकुलंतथा ॥
विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णंमहत्तरम् ॥ ५० ॥

तथा राग द्वेषसे युक्त काम, लोभ और मोहसे व्याकुल विवाद करते जनोंसे आकीर्ण व अतिशय धनसे पूर्ण ॥ ५० ॥

पश्यन्सत्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद्राजमन्दिरम् ॥
प्राप्तःपरमतेजस्वी द्वितीयइवभास्करः ॥ ५१ ॥

इसप्रकार त्रिविध प्रजाको देखते हुये राजमंदिर की ओर चले और वे परमतेजस्वी याने दूसरे सूर्य की समान यहाँ पर प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥

निवारितश्चतत्रैव प्रतीहारेणकाष्ठवत् ॥
तत्रैवचस्थितोद्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन् ॥ ५२ ॥

वहांपरभी द्वारपालने निवारण किया तब काष्ठके समान द्वार पर मार्गकी चिंता करते स्थित रहे ॥ ५२ ॥

छायायामातपेचैव समदर्शीमहातपः ॥
ध्यानंकृत्वातथैकान्त स्थितःस्थाणुरिवाचलः ५३॥

छाया में और धूप में समदर्शी महातपस्वी एकान्त में ध्यान किये स्थाणुकी समान अचल स्थितरहे ॥ ५३ ॥

नमुहूर्तादुपागत्य राज्ञोमात्यःकृताञ्जलिः ॥
प्रवेशयत्ततःकक्षां द्वितीयांराजवेश्मनः ॥ ५४ ॥

तब एक मुहूर्त्तमें राजाका अमात्य (मंत्री) आकर हाथ जोड़ कर राजमंदिरकी दूसरी कक्षा में प्रवेश कराता हुवा ॥ ५४ ॥

तत्रदिव्यंमनोरम्यं पुष्पितंदिव्यपादपम् ॥
तद्वनंदर्शयित्वातु कृत्वाचातिथिसत्क्रियाम् ॥ ५५ ॥

वहां दिव्य मनोरम फूले वृक्षोंका बाग था उस वनको दिखा कर और अतिथि सत्क्रिया करके ॥ ५५ ॥

वारमुख्याःस्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः ॥

गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः ॥ ५६ ॥

वहां वारमुखी स्त्रियां जो राजाकी सेवामें परायणथीं जो कि गीत वादित्रमें कुशल और कामशास्त्र में विशारद थीं ॥ ५६ ॥

ताआदिश्य च सेवार्थं शुकस्यमन्त्रिसत्तमः ॥
निर्गतःसहद्वारस्थेनाच्छुकःस्थितस्तदा ॥ ५७॥

मंत्रिश्रेष्ठने उनको शुकदेवजी की सेवा के निमित्त आज्ञादी और आप (द्वारपाल) और मंत्री वहांसे चले आये और शुक-देवजी वहां स्थितरहे ॥ ५७ ॥

पूजितःपरयाभक्त्या ताभिःस्त्रीभिर्यथाविधि ॥
देशकालोद्भवेन नानान्नेनातितोषितः ॥ ५८ ॥

उन स्त्रियोंने परमभक्तिसे यथाविधि शुकदेवजीकी पूजा की और देशके अनुसार उत्पन्न अन्नसेभी सत्कार किया ॥ ५८ ॥

ततोन्तःपुरवासिन्यस्तस्यान्तःपुरकाननम् ॥
रम्यंसंदर्शयामासुरङ्गनाःकाममोहिताः ॥ ५९ ॥

फिर वे अन्तःपुरकी रहनेवालीं उनको अन्तःपुरका कानन जो बड़ा मनोहरथा वह काम मोहित होकर दिखातीहुईं ॥ ५९ ॥

सयुवारूपवान्कान्तो मृदुभाषीमनोरमः ॥
दृष्ट्वातामुमुहुःसर्वास्तंचकाममिवापरम् ॥ ६० ॥

वे युवा रूपवान् मनोहर मृदुभाषी मनोरमथे उनको कामके समान देखकर सब मोहित होगईं ॥ ६० ॥

जितेन्द्रियंमुनिंमत्वा सर्वाःपर्यचरंस्तदा ॥
आरणेयस्तुशुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत् ॥ ६१ ॥

मुनिको जितेंद्रिय मानकर सब सेवा करने लगीं और शुद्धा-त्मा व्यास पुत्र श्रीशुकदेवजी उनको माता करके जानतेहुये॥६१॥

है हे पुत्र ! तुम (गृहस्थाश्रम से) क्यों डरते हो वनवृत्तिही परम तपस्या है ॥ १० ॥

[illegible] ॥
कुरुदारान्महाभागपृच्छवात्वंनृपतिं च तम् ॥ ११ ॥

हे राजसिंह! मुझ से वे बोले कि तुम जाकर उस राजा का दर्शन करो और मनके मोहका त्यागन करो हे महाभाग ! दारसंग्रह करो अथवा उस राजा से पूंछ लेना ॥ ११ ॥

संदेहंतेमनोजातंकथयिष्यतिपार्थिवः ॥
तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमामेहितरसासुत ॥ १२ ॥

वह राजा तुम्हारे मनके संदेह को दूरकरैगा हे पुत्र ! उनके वचन सुनकर तुम शीघ्र आ जावो ॥ १२ ॥

गतोहंमहाराजत्वत्पुरेचतदाज्ञया ॥
मोक्षकामोस्मिराजेन्द्रब्रूहिकृत्यंममानघ ॥ १३ ॥

हे महाराज ! उनकी आज्ञा से मैं तुम्हारे नगर में आया हूं हे राजेन्द्र ! हे पापरहित ! मुझे मोक्ष की इच्छा है इसलिये आप कृत्य को वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥

[illegible] ॥
ज्ञानंवानृपराजेन्द्रमोक्षंप्रतिचकारणम् ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र ! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन वा ज्ञान जो मोक्षके प्रतिकारणहो सो आप कथन कीजिये ॥ १४ ॥

जनक उवाच ॥

[illegible] ॥
[illegible]गुरौ ॥ १५ ॥

राजा जनकजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! जो [illegible]

जन को करना चाहिये सो सुनो प्रथम उपनीत (यज्ञोपवीत) होकर वेदाभ्यास के निमित्त गुरुकुल में निवासकरै ॥ १५ ॥

अधीत्यवेदवेदांतान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ॥
समावृत्तस्तुगार्हस्थ्येसदारोनिवसेन्मुनिः ॥ १६ ॥

वहां वेद व वेदांतों का अध्ययन करके गुरुदक्षिणा देकर समावर्तन संस्कारपूर्वक गृहस्थाश्रममें स्त्रीसहित निवासकरै ॥ १६ ॥

नान्यवृत्तिस्तुसंतोषीनिराशीगतकल्मषः ॥
कुर्वन्होमादिकर्माणिकुर्वाणःसत्यवाक्शुचिः ॥ १७ ॥

यजन याजनादि से भिन्न और वृत्तियों करके संतोषी आशाहीन कल्मषरहित अग्निहोत्रादि कर्म करते हुये सत्यवाक् पवित्र ॥ १७ ॥

पुत्रंपौत्रंसमासाद्य वानप्रस्थोश्रमेवसेत् ॥
तानजित्वाषड्रिपूञ्जित्वाभार्यांपुत्रेनिवेश्यच ॥ १८ ॥

पुत्र पौत्र को प्राप्त होकर वानप्रस्थ आश्रम में निवास करै तप से काम क्रोधादि छह शत्रुओं को जीतकर व भार्या पुत्र को सौंप कर ॥ १८ ॥

सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्यधर्मवित् ॥
वसेत्तुर्याश्रमेशांतःशुद्धेवैराग्यसंभवे ॥ १९ ॥

यथान्याय धर्मात्मा सब अग्नियों का आत्मामें आरोपण करके शुद्ध वैराग्य होनेपर चौथे आश्रममें शांतहो निवासकरै ॥ १९ ॥

विरक्तस्य द्विजस्यैव हि संन्यासेनान्यस्य कस्यचित् ॥
वेदवाक्यमिदं सत्यंनान्यथेतिमतिर्मम ॥ २० ॥

संन्यास में विरक्तके बिना और किसीका अधिकार नहीं है यह वेदवाक्य सत्यहै अन्यथा नहीं यह मेरी मति है ॥ २० ॥

शुकाष्टचत्वारिंशद्वैसंस्कारावेदबोधिताः ॥
चत्वारिंशद्गृहस्थस्यप्रोक्तास्तत्रमहात्मभिः॥२१॥

हे शुकदेवजी ! जन्मसे श्मशानपर्यन्त (४८) संस्कार वेदने कहे हैं उसमें महात्माओं ने गृहस्थको “४०,,संस्कारकहे हैं॥२१॥

अष्टौचमुक्तिकामस्यप्रोक्ताःशमदमादयः ॥
आश्रमादाश्रमंगच्छेदितिशिष्टानुशासनम् ॥ २२॥

और शम दमादि आठ संस्कार मुक्तिकी कामनावालोंकोकहे हैं शिष्टोंकी यह आज्ञा है कि आश्रमसे आश्रम में प्रवेश करै॥२२॥

श्रीशुक उवाच ॥

उत्पन्नेहृदिवैराग्येज्ञानविज्ञानसंभवे ॥
अवश्यमेववस्तव्यमाश्रमेषुवनेषुवा ॥ २३ ॥

शुकदेवजी बोले कि जब बुद्धिमें वैराग्य [illegible] उत्पन्न होनेसे ज्ञान वैराग्य प्राप्ति हो तब चाहे गृहस्थादि [illegible] में निवास करै वा वनमें निवास करे ॥ २३ ॥

जनक उवाच ॥

इंद्रियाणि[illegible]नियुक्तानिमानद् ॥
[illegible]विकारं[illegible]ः ॥ २४ ॥

जनकजी बोले कि हे मानद ! इंद्रियाँ बड़ी [illegible] हैं नियुक्त नहीं हैं वे अपक्व पुरुषको अनेक विकार करती हैं ॥ २४ ॥

भोजनेच्छांसुखेच्छांचशय्येच्छामात्मजस्यच ॥
[illegible]विकारे[illegible] ॥ २५ ॥

भोजन, सुख, सेज, पुत्रकी इच्छा जब विकारकी प्राप्ति यति अवस्थान में हो तौ यह कैसी होसक्ती है ॥ २५ ॥

[illegible]तिवै ॥
[illegible]परित्यजेत् ॥ २६ ॥

गृहस्थाश्रम में स्थित होकर भी शांत, सुमति, आत्मज्ञानी, प्रसन्नता और दुःख न मानै व लाभालाभ में समानरहै॥ ३१॥

विहितंकर्मकुर्वाणस्त्यजंश्चिंताम्चितंचयत् ॥
आत्मलाभेनसंतुष्टोमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३२ ॥

विहितकर्म करते हुये चिंता को त्यागना चाहिये और आत्मलाभ में संतुष्ट होकर चिंता त्याग देनी चाहिये वह मुक्त होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ३२ ॥

पश्याहंराज्यसंस्थोपिजीवन्मुक्तोयथानघ ॥
विचरामियथाकामंनमेकिंचित्प्रजायते ॥ ३३ ॥

हे पापरहित ! देखो मैं राज्य में स्थित होकर भी जीवन्मुक्तहूं और यथेच्छ विचरता हूं मुझे कुछ भी नहीं होता है ॥३३॥

भुंजानोविविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः ॥
भविष्यामियथाहंत्वंतथामुक्तोभवानघ ॥ ३४ ॥

अनेक प्रकार के भोगों को भोगते और अनेक प्रकार के कर्म करते भी जैसे मैं जीवन्मुक्त हूं हे पापरहित ! इसी प्रकार तुम भी होवो ॥ ३४ ॥

कथ्यतेखलुयद्दृश्यमदृश्यंवध्यतेकुतः ॥
दृश्यानिपंचभूतानिगुणास्तेषांतथापुनः ॥ ३५ ॥

यह जो जगत् दीखता है वह माया का विकार होने से दीखता है परमार्थ से नहीं है फिर आत्मतत्त्व कैसे बंधन में होसक्ता है सूर्य से प्रकाशित घटादि सूर्य को नहीं बांध सक्के पंच भूत और उनके गुण लक्षित होते हैं ॥ ३५ ॥

आत्मगम्योनुमानेनप्रत्यक्षेणनकुत्रचित् ॥
नकथंबध्यतेब्रह्मनिर्विकारोनिरंजनः ॥ ३६ ॥

आत्मा तौ अनुमान मेंही जाना जाताहै प्रत्यक्ष में नहींजाना

आता है ब्रह्मन् ! वह निर्विकार निरंजन किस प्रकार बंधन को प्राप्त होसक्ता है ॥ ३६ ॥

मनस्तुसुखदुःखानांमहतांकारणंद्विज ॥
जातेतुनिर्मलेह्यस्मिन्सर्वंभवतिनिर्मलम् ॥ ३७ ॥

हे द्विज ! केवल मनही भारी सुख दुःखोंका कारणहै मनके निर्मल होने में सब निर्मल होता है अविद्याजन्य [illegible] वच्छिन्न जीव मनकी वृत्ति और अविद्यासे कर्ता भोक्तासा प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥

भ्रमन्सर्वेषुतीर्थेषु स्नात्वास्नात्वापुनःपुनः ॥
निर्मलं न मनोयावत्तावत्सर्वंनिरर्थकम् ॥ ३८ ॥

सब तीर्थों में भ्रमण करने और वारंवार स्नान करनेसे जब तक मन निर्मल नहीं होताहै तबतक सबही निरर्थकहै ॥ ३८ ॥

नदेहोनचजीवात्मानेन्द्रियाणिपरंतप ॥
मनएवमनुष्याणांकारणंबन्धमोक्षयोः ॥ ३९ ॥

हे परंतप ! देह जीवात्मा मन इन्द्रिय इनमें एकभी नहीं परंतु मनुष्योंके बंधमोक्षोंका मनही कारण है ॥ ३९ ॥

शुद्धोमुक्तःसदैवात्मानवैबध्येतकर्हिचित् ॥
बन्धमोक्षौमनः[illegible]शान्तेप्रशाम्यति॥४०॥

आत्मा सदा शुद्ध मुक्त है वह कभी बंधनमें नहीं आता मन मेंही बंधमोक्ष रहताहै मनके शांत होनेपर शांत होजाताहै ॥ ४० ॥

[illegible]भेदाः[illegible]ः ॥
एकात्मत्वेकथंभेदःसंभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ ४१ ॥

शत्रु, मित्र, उदासीन वह सब मनोगत भेद हैं द्वैतदर्शन से एकात्मक होने में कैसे भेद संभवित होता है ॥ ४१ ॥

जीवोब्रह्मसदैवाहं न[illegible]विचारणा ॥

भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

मैं जीवसंज्ञक ब्रह्माही सदाहूं इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है संसारमें वर्तनेसे भेदबुद्धि प्रवृत्त होतीहै ॥ ४२ ॥

अविद्येयंमहाभागविद्याचतन्निवर्तनम् ॥
विद्याविद्येचविज्ञेयेसर्वदैवविचक्षणैः ॥ ४३ ॥

हे महाभाग ! यह सब अविद्या है और उसकी निवृत्ति विद्या है विचक्षणोंको विद्या और अविद्याका ज्ञान सदा करना चाहिये ॥ ४३ ॥

विना [illegible] कथंसुखम् ॥
अविद्ययाविनातद्वत्कथंविद्यांचवेत्तिवै ॥ ४४ ॥

विना धूपके छायाका सुख किस प्रकार जाना जासक्ता है इसीप्रकार अविद्याके विना विद्याका ज्ञान नहीं होता है ॥ ४४ ॥

गुणा गुणेषु वर्तन्ते भूतानि च तथैवच ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषुकोदोषस्तत्रचाऽऽत्मनः ॥ ४५ ॥

गुण गुणों में और पंचभूत पंचभूतों में वर्तते हैं इन्द्रिय इन्द्रियों में वर्तती हैं उसमें आत्माका क्या दोष है ? ॥ ४५ ॥

[illegible] मर्यादाः ॥
अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ ॥ ४६ ॥

लोककी रक्षा करनेके निमित्त वेदोंमें सर्वत्र मर्यादा स्थापित की है हे पापरहित ! अन्यथा सौगत (बुद्धों) के समान धर्मनाश होताहै ॥ ४६ ॥

धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः ॥
तस्माद्वेदविनिर्दिष्टमार्गेण गच्छतां शुभम् ॥ ४७ ॥

धर्म के नाश होने से उचित वर्णाचार नष्ट होजाता है इसलिये वेदनिर्दिष्ट मार्ग से चलनेवालों का कल्याण होताहै ॥ ४७ ॥

धर्मसेतुओं के रक्षक उत्पथगामियों के शासनकर्ता और उन्होंने बड़ी बड़ी दक्षिणाओं के बहुत से यज्ञ किये हैं ॥ ५३ ॥

चर्मणांपर्वतोजातोविन्ध्याचलसमःपुनः ॥
मेघाम्बुप्लावनाज्जातानदीचर्मण्वतीशुभा ॥ ५४ ॥

उनके यज्ञीय पशुओं के चर्म का शैल के समान ढेर होगयाथा मेघों का जल उसपर पड़ने से चर्मण्वती नदी वह चलीहै ॥५४॥

तेऽपिराजादिवंयाताःकीर्तिरस्याचलाभुवि ॥
एवंधर्मेषुवेदेषु नमेबुद्धिःप्रवर्तते ॥ ५५ ॥

वे भी राजा स्वर्ग को गये कि जिनकी भूमंडलमें बड़ी कीर्ति है वेदके ऐसे धर्मों में मेरी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती कारण कि स्वर्ग की प्राप्ति अनित्य है ॥ ५५ ॥

स्त्रीसंगेनसदाभोगेसुखंप्राप्नोतिमानवः ॥
अलाभेदुःखमत्यन्तं जीवन्मुक्तःकथंभवेत् ॥ ५६ ॥

और आपके भी जीवन्मुक्त होने में मुझे संदेह है जो मनुष्य स्त्रीसंगमें भोगसे सदा सुख पाता है उसके विना दुःख मानता है फिर वह जीवन्मुक्त कैसे होसक्ता है ॥ ५६ ॥

जनक उवाच ॥

हिंसायज्ञेषुप्रत्यक्षासाऽहिंसापरिकीर्तिता ॥
उपाधियोगतोहिंसानान्यथेतिविनिर्णयः ॥ ५७ ॥

जनकजी बोले कि हे शुकदेव! यज्ञोंके बीचमें जो हिंसा है वह अहिंसाहीहै "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्रतीर्थेभ्यः" इति श्रुतेः॥ यदि वह हिंसा रागरूप उपाधि से कीजाय तो हिंसाही होगी अर्थात् मांसभक्षणके निमित्त याग करना हिंसा है ॥ ५७ ॥

यथाचेन्धनसंयोगादग्नौधूमःप्रवर्तते ॥
अरागेणचयत्कर्मतथाऽहंकारवर्जितम् ॥ ५८ ॥

जैसे गीले ईंधनके संयोग से अग्निमें धूम प्रवृत्त होता है और उसके विना धूम नहीं होता है इसीप्रकार रागादि उपाधि के रहित होनेसे हिंसा नहीं है ॥ ५८ ॥

अहिंसांचैवतांविद्धिवेदोक्तांमुनिसत्तम ॥
रागिणांसापिहिंसैवनिःस्पृहाणांनसामता ॥ ५९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इसप्रकारसे तुम वेदोक्त हिंसाको जानो रागियों के निमित्त हिंसाही है और विरागियोंको नहीं है ॥ ५९ ॥

अरागेणचयत्कर्मतथाऽहंकारवर्जितम् ॥
अकृतंवेदविद्वांसःप्रवदन्तिमनीषिणः ॥ ६० ॥

जो कर्म अहंकाररहित राग व द्वेषके विना कियाहै अर्थात् ईश्वर की प्रसन्नताके निमित्त भगवान् में कर्मफलसमर्पणरूप जो कर्म किया जाताहै उसको विद्वान् मनीषी अकृतही मानतेहैं ॥ ६० ॥

गृहस्थानांतुहिंसैवयायज्ञेद्विजसत्तम ॥
अरागेणचयत्कर्मतथाऽहंकारवर्जितम् ॥ ६१ ॥

रागी गृहस्थियों को तो वह हिंसाही होगी और जो रागरहित अहंकारवर्जित कर्म किया है ॥ ६१ ॥

साऽहिंसैवमहाभागमुमुक्षूणांजितात्मनाम् ॥ ६२ ॥

इति श्री[illegible]महापुराणेप्रथमस्कन्धेश्री
शुक[illegible]नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वह जितात्मा मुमुक्षुओंको अहिंसाही है अथवा जिनकी मांसादिमें रुचि अधिकतर बढ़गई है उसको यज्ञसे अन्यत्र पशुवध (हिंसा) कहकर यज्ञमें नियमपूर्वक कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करा छुड़ाने में तात्पर्य है कि जिससे शनैः २ छोड़ देवे ॥ ६२ ॥

इति श्री[illegible]महापुराणेप्रथमस्कन्धेभाषाटीकायां
श्रीशुक[illegible]नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच ॥

संदेहोऽयंमहाराज वर्ततेहृदयेमम ॥
मायामध्येवर्तमानःसकथंनिःस्पृहोभवेत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! यह मेरे हृदय में और भी संदेह है कि मायामें वर्तमान यह मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सक्ता है ॥ १ ॥

शास्त्रज्ञानंचसंप्राप्यनित्यानित्यविचारणम् ॥
त्यजतेनमनोमोहंसकथंमुच्यतेनरः ॥ २ ॥

शास्त्रज्ञानको प्राप्त हो नित्यानित्य के विचारको करके भी योगादि के विना मन मोहको नहीं त्यागता है फिर वह मनुष्य कैसे मुक्त होताहै ॥ २ ॥

अन्तर्गतंतमश्छेत्तुंशास्त्राद्बोधोहिनक्षमः ॥
यथाननश्यतितमःकृतयादीपवार्तया ॥ ३ ॥

अविद्या से जो मनमें अंधकार छारहा है वह शास्त्रजन्य परोक्ष ज्ञानसे नष्ट नहीं होता जैसे दीपककी बाती करने से अंधकार दूर नहीं होता है ॥ ३ ॥

अद्रोहःसर्वभूतेषुकर्तव्यःसर्वदाबुधैः ॥
नकथंराजशार्दूलगृहस्थस्यभवेत्तथा ॥ ४ ॥

पंडितोंको सदा सब प्राणियोंसे द्रोह त्यागनाचाहिये हे राजशार्दूल! यह वार्ता गृहस्थको साध्य नहीं है ॥ ४ ॥

विनैयवाननेत्रांनानाथाराज्यसुखैस्तथा ॥
जनैवणाचसंग्रामेजीवन्मुक्तःकथंभवेः ॥ ५ ॥

वित्तैषणा, राज्यसुखैषणा और संग्राम में जयैषणा आपकी शांत नहीं हुई फिर मुक्त कैसे होसक्तेहो ॥ ५ ॥

चौरेषुचौरबुद्धिस्तेसाधुबुद्धिस्तुतापसे ॥
स्वपरत्वंतवाप्यस्तिविदेहस्त्वंकथंनृप ॥ ६ ॥

आपकी चोरों में यह चोर है ऐसी बुद्धि है तपस्वियोंमें यह तपस्वीहै ऐसी बुद्धिहै अपना पराया तुममें लगाहुवाहै हे राजन्! फिर आप विदेह किस प्रकार होसक्ते हैं ॥ ६ ॥

कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान्वेत्सिशुभाशुभान् ॥
शु[illegible] नाशुभेषु तथा नृप ॥ ७ ॥

कडुवा, तीखा, कसैला, अम्ल आदि अच्छे बुरे रसों को तुम जानतेहो अच्छेमें तुम्हारा चित्त रमताहै और अशुभोंकी इच्छा नहीं है ॥ ७ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्चतववशात्सम्भवन्तिहि ॥
अवस्थास्तुयथाकालंतुरीयातुकथंनृप ॥ ८ ॥

हे राजन्! आप में समय २ पर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था वर्तती हैं फिर तुरीया कहांसे होगी ॥ ८ ॥

पदात्यश्वरथेभाश्चसर्वेचैववशागामम ॥
स्वाम्यहंचैवसर्वेषां[illegible] ॥ ९ ॥

पैदल, घोड़े, हाथी और रथ ये सब मेरे वशीभूत हैं इन सब का मैं स्वामी हूं कहिये यह बात आप मानतेहैं या नहीं ॥ ९ ॥

मिष्टा[illegible]मुदितोविमनास्तथा ॥
[illegible] ॥ १० ॥

हे राजन्! सदा मीठा खातेहो मुदित और विमन रहते हो माला और सर्पमें भेद [illegible] कब होसक्तेहो ॥१०॥

विमुक्तस्तुभवेद्राजन्समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
एकात्मबुद्धिःसर्वत्रहितकृत्सर्वजन्तुषु ॥ ११ ॥

हे राजन् ! मिट्टी और सुवर्ण में समान दृष्टि करने सेही यह प्राणी मुक्त होता है इसलिये सबमें एकात्मबुद्धि और सब जन्तुओं का हित करना चाहिये ॥ ११ ॥

नमेऽद्यरमतेचित्तंगृहदारादिषुक्वचित् ॥
एकाकीनिःस्पृहोऽत्यर्थंचरेयमितिमेमतिः ॥ १२ ॥

मेरा तौ अब गृह दारादि में कहीं भी चित्त नहीं रमता है इकला निःस्पृह होकर विचरण करूं यही मेरी मति है ॥ १२ ॥

निःसङ्गोनिर्ममःशान्तःपत्रमूलफलाशनः ॥
मृगवद्विचरिष्यामिनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ॥ १३ ॥

निस्संग निर्मल शांत व पत्र मूल फलों का भोजन करता हुवा मैं निष्परिग्रह व निर्द्वन्द्व होकर मृगवत् विचरण करूंगा ॥ १३ ॥

किंमेगृहेणवित्तेनभार्ययाचस्वरूपया ॥
विरागमनसःकामंगुणातीतस्यपार्थिव ॥ १४ ॥

हे राजन् ! मुझको घर धन और रूपवती भार्यासे क्या प्रयोजन है इस गुणातीत मनमें पूर्ण विराग है ॥ १४ ॥

चिन्त्यसेविविधाकारंनानारागसमाकुलम् ॥
दम्भोऽयंकिलतेभातिविमुक्तोस्मीतिभाषसे ॥१५॥

आप अनेक प्रकारके रागसे व्याप्त विविध आकार प्रपंचका विचार करतेहो अतएव अपने लिये विमुक्त कहना आपका दंभ विदित होता है ॥ १५ ॥

कदाचिच्छत्रुजाचिन्ताधनजाचकदाचन ॥
कदाचित्सैन्यजाचिन्तानिश्चिन्तोसिकदान्नृप ॥१६॥

तुमको कभी शत्रु और कभी धन से चिन्ता रहतीहै कभी सेनाकी चिन्ता रहतीहै कहिये तो हे राजन् ! आप कब निश्चिंत रहतेहो ॥ १६ ॥

वैखानसायेमुनयोमिताहाराजितव्रताः ॥
तेपिमुह्यन्तिसंसारे जानन्तोपिह्यसत्यताम् ॥१७॥

जो वैखानस मिताहारी जितव्रतहैं वे असत्य जानकर भी इस संसारमें मोहित होते हैं ॥ १७ ॥

तववंशसमुत्थानां विदेहाइतिसूचने ॥
कुटिलंनामजानीहि नान्यथेतिकदाचन ॥ १८ ॥

आपके वंशमें हुओंका जो विदेह नाम है यह कुटिल नामहै इसमें अन्यथा नहीं है ॥ १८ ॥

विद्याधरोयथामूर्खो जन्मान्धस्तुदिवाकरः ॥
लक्ष्मीधरोदरिद्रश्च नामतेषांनिरर्थकम् ॥ १९ ॥

जसे मूर्खका नाम विद्याधर जन्मांध का नाम दिवाकर हो दरिद्रका नाम लक्ष्मीधर हो इनका यह नाम निरर्थकहीहै १९॥

तववंशोद्भवायेयेश्रुताःपूर्वेनराधिपाः ॥
विदेहाइतिविख्याता नामतःकर्मतोनते ॥ २० ॥

आपके वंशमेंउत्पन्न जो राजा मैंने पूर्वमें सुने हैं वे नामसेही विदेह थे कर्म से नहीं ॥ २० ॥

निमिनामाभवद्राजापूर्वंतवकुलेनृप ॥
यज्ञार्थंसतुराजर्षिर्वशिष्ठंस्वगुरुंमुनिम् ॥ २१ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पहिले कुलमें निमिनामक राजा हुये उन्होंने यज्ञके निमित्त मुनिराज अपने वशिष्ठ गुरुको ॥ २१ ॥

निमन्त्रयामासतदातमुवाचनृपंमुनिः ॥
निमन्त्रितोस्मियज्ञार्थंदेवेन्द्रेणाधुनाकिल ॥ २२ ॥

निमन्त्रित किया तब मुनिने राजा से कहा कि इस समय तो मुझे इन्द्रने यज्ञके निमित्त निमन्त्रित कियाहै ॥ २२ ॥

कृत्वातस्यमखंपूर्णंकरिष्यामितवापिवै ॥
तावत्कुरुष्वराजेन्द्रसंभारंतुशनैःशनैः ॥ २३ ॥

उनका यज्ञपूर्ण करके तब तुम्हारा भी यज्ञ पूर्ण करूंगा हे राजन् ! तुम धीरे २ सामग्री एकत्र करो ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वानिर्ययौसोथमहेन्द्रयजनेमुनिः ॥
नि[illegible]ंगुरुंकृत्वा[illegible]मखमुत्तमम् ॥ २४ ॥

यह कह मुनि[illegible] महेन्द्र के भवन में चलेगये निमि राजाने दूसरे को गुरु करके यज्ञ आरम्भ किया ॥ २४ ॥

तच्छ्रुत्वाकुपितोऽत्यर्थंवशिष्ठोन्टपतिंपुनः ॥
[illegible]देहस्तेगुरुलोपक ॥ २५ ॥

यह सुनकर वशिष्ठजी राजापर बहुत क्रुद्धहुये और बोले कि हे गुरुके लोप करनेवाले ! तुम्हारा देह पतित होजाय ॥ २५ ॥

[illegible] ॥
अन्योन्यशापात्पतितौतावेवचमयाश्रुतम् ॥ २६ ॥

राजा ने भी शाप दिया कि तुम्हारा भी देह पतित होजाय वे दोनों परस्पर शापसे पतित हुये ऐसा हमने सुनाहै ॥ २६ ॥

विदेहेन[illegible]गुरुःस्वयम् ॥
विनोदइवमेचित्तेविभातिन्टपसत्तम ॥ २७ ॥

हे राजेन्द्र ! विदेहने स्वयं अपने गुरुको कैसे शाप दिया मेरे चित्तमें यह विनोद विदित होताहै फिर वशिष्ठजी मित्राव-रुणके वीर्यसे उत्पन्न हुये और निमि पलकोंपर स्थितहुये ॥ २७॥

जनक उवाच ॥

सत्यमुक्तंत्वयाज्ञानाभिथ्याकिंचिदिदंमतम् ॥

तथापिशृणुविप्रेन्द्रगुरुर्ममसुपूजितः ॥ २८ ॥

जनकजी बोले कि हे शुकदेवजी! यह तुमने सत्य कहा कुछ भी मिथ्या नहीं है तौ भी हे विप्रेन्द्र! सुनो जो हमारे गुरु व्यासजी ने कहा है ॥ २८ ॥

पितुःसङ्गंपरित्यज्यत्वंवनंगन्तुमिच्छसि ॥
मृगैःसहसुसम्बन्धोभवितातेनसंशयः ॥ २९ ॥

पिताके संगका त्यागन करके तुम वनमें आनेकी इच्छा करतेहो तौ तुम्हारा मृगों के साथ सम्बन्ध होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥

महाभूतानिसर्वत्रनिःसङ्गःकुभविष्यसि ॥
आहारार्थंसदाचिन्तानिश्चिन्तःस्याः[illegible] ॥ ३० ॥

महाभूतही जब सर्वत्र हैं तो निःसंग कैसे होसक्ते हैं जब आहार के वास्ते चिंताहै तो निश्चिन्त किसतरह होसकेहैं ३० ॥

दण्डाजिनकृताचिन्ता[illegible]मेपिच ॥
[illegible]स्यचिन्ता[illegible] ॥ ३१ ॥

दण्डाजिनकी चिन्ता जैसी तुमको वनमें रहतीहै इसीतरह मेरेको राज्य की चिंता रहती है ॥ ३१ ॥

[illegible]नः ॥
नमेविकल्पसन्देहौनि[illegible]सर्वथा ॥ ३२ ॥

दूरदेश से आयेहुये तुमको विकल्प प्राप्त है विकल्प और सन्देह न होनेसे मैं सर्वथा [illegible] हूं ॥ ३२ ॥

[illegible]सुखं[illegible] ॥
[illegible] ॥ ३३ ॥

हे विप्र! मैं सदा सुखसे सोता और खाताहूं और मैं [illegible] नहींहूं इस बुद्धिसे मैं सदा सुखी रहताहूं ॥ ३३ ॥

त्वंतुदुःखीसदैवासिबद्धोहमितिशङ्कया ॥
इतिशङ्कांपरित्यज्यसुखीभवसमाहितः ॥ ३४ ॥

मैं बद्धहूं इस शङ्कासे तुम सदाही दुःखीहो इस शङ्का को त्यागकरिकै स्रावधानी से सुखी होवो ॥ ३४ ॥

देहोयंममबन्धोऽयंनममेतिचमुक्तता ॥
तथाधनंगृहंराज्यंनममेतिचनिश्चयः ॥३५ ॥

यह देह मेराहै मैं बद्धहूं इस विचार से मुक्तता नहीं होती धन घर राज्यभी मेरा नहीं यह मुझको निश्चय है जब देहही मेरा नहीं तो राज्य कैसा ॥ ३५ ॥

सूत उवाच ॥

तच्छ्रुत्वावचनंतस्य शुकः प्रीतमनाभवत् ॥
आपृच्छ्यतंजगामाऽऽशुव्यासस्याश्रममुत्तमम्॥३६ ॥

सूतजी बोले यह राजा के वचन सुनकर शुकदेवजी बहुत प्रसन्नहुये और राजा की आज्ञा लेकर पिताके श्रेष्ठ आश्रम में गये ॥ ३६ ॥

आगच्छन्तंसुतंदृष्ट्वाव्यासोपिसुखमाप्तवान् ॥
आलिङ्ग्याघ्रायमूर्धानंपप्रच्छकुशलंपुनः ॥ ३७ ॥

पुत्रको आया हुआ देखकर व्यासजी प्रसन्नहुये और आलिङ्गन कर शिर सूंघ कुशल प्रश्न पूंछते हुये ॥ ३७ ॥

स्थितस्तत्राऽऽश्रमेरम्येपितुःपार्श्वेसमाहितः ॥
वेदाध्ययनसंपन्नःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३८ ॥

और उस रमणीक आश्रममें पिताके समीप स्थितहुये वेदाध्ययनमें सम्पन्न सब शास्त्र में पण्डित हुये ॥ ३८ ॥

जनकस्यदशांदृष्ट्वाराज्यस्थस्यमहात्मनः ॥
सानिर्वृतिंपरांप्राप्यपितुराश्रमसंस्थितः ॥ ३९ ॥

राज्यमें स्थित जनककी दशाको देखकर परानिर्वृत्ति (परमसुख) को प्राप्त होकर पिताके आश्रममें स्थितहुये ॥ ३९ ॥

पितृणांसुभगाकन्यापीवरीनामसुन्दरी ॥
शुकश्चकारपत्नींतांयोगमार्गस्थितोपिहि ॥ ४० ॥

और पितरोंकी पीवरी नाम कन्या परम सुन्दरीथी योगमार्गमें स्थितहोकर भी श्रीशुकदेवजीने उसे पत्नी बनाया ॥ ४० ॥

सतस्यांजनयामासपुत्रांश्चतुरएवहि ॥
कृष्णंगौरप्रभंचैवभूरिदेवंश्रुतंतथा ॥ ४१ ॥

और उसमें उन्होंने चार पुत्र उत्पन्न किये (१) कृष्ण (२) गौरप्रभ (३) भूरिदेव (४) श्रुत ॥ ४१ ॥

कन्यांकीर्तिंसमुत्पाद्यव्यासपुत्रःप्रतापवान् ॥
ददौविभ्राजपुत्रायत्वणुहायमहात्मने ॥ ४२ ॥

और प्रतापवान् व्यास पुत्रने एक कीर्त्तिनामकन्या उत्पन्नकी और उसको विभ्राजके अणुह पुत्र महात्माको व्याहदी ॥ ४२ ॥

अणुहस्यसुतःश्रीमान्ब्रह्मदत्तःप्रतापवान् ॥
ब्रह्मज्ञःपृथिवीपालःशुककन्यासमुद्भवः ॥ ४३ ॥

अणुहका पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुवा यह राजा शुकदेवजीकी कन्यामें उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मज्ञानी हुवा ॥ ४३ ॥

कालेनकियतातत्रनारदस्योपदेशतः ॥
ज्ञानंपरमकंप्राप्ययोगमार्गमनुत्तमम् ॥ ५४ ॥

फिर कुछ समयके उपरान्त नारदजीके उपदेशसे परमज्ञान और उत्तम योगमार्ग को प्राप्तहोकर ॥ ४४ ॥

पुत्रेराज्यंनिधायाथगतोबदरिकाश्रमम् ॥
मायाबीजोपदेशेनतस्यज्ञानंनिरर्गलम् ॥ ४५ ॥

पुत्रको राज्यमें स्थापन करके बद्रिकाश्रमको गया मायाबीज भुवनेश्वरी के मन्त्रोपदेशसे परमज्ञानवान् हुआ ॥ ४५ ॥

नारदस्यप्रसादेनजातंसद्योविमुक्तिदम् ॥
[illegible]तुःशुकः ॥ ४६ ॥

और नारदजीके उपदेशसे जो मुक्तिका देनेवाला है शुकदेवजी भी पिताका संग [illegible] पर्वतके मनोहर शिखरमें ॥ ४६ ॥

ध्यानमास्थायविपुलंस्थितः सङ्गपराङ्मुखः ॥
उत्पपातगिरेःशृङ्गात्सिद्धिंचपरमांगतः ॥ ४७ ॥

सब संग छोड़कर ध्यान में स्थितहो परमअणिमादि सिद्धि को प्राप्तहो पर्वत शृङ्ग से ऊपर उड़गये ॥ ४७ ॥

[illegible]राजयथारविः ॥
गिरेःशृङ्गंद्विधाजातं शुकस्योत्पतनेतदा ॥ ४८ ॥

उस समय शुकदेवके उड़नेके वियोग से पर्वतशृङ्ग विदीर्ण होगया और वह महातेज आकाश में प्राप्त हुये सूर्य के समान सुशोभित हुये ॥ ४८ ॥

[illegible]शुकश्चाऽऽकाशगोऽभवत् ॥
अन्तरिक्षेयथावायुः[illegible]र्षिभिः ॥ ४९ ॥

जिस समय शुकदेवजी आकाश को गये तब बड़े उत्पात हुये जिसप्रकार [illegible] में वायुहो [illegible] महर्षियों से व्याकुलहो ॥ ४९ ॥

[illegible]द्वितीयइवभास्करः ॥
[illegible] ॥ ५० ॥

दूसरे भास्करकी समान तेजसे विराजितहुये और विरह से [illegible] पुत्र २ ऐसा [illegible] कहनेलगे ॥ ५० ॥

व्यास उवाच ॥

नशोकोयातिदेवेश किंकरोमिजगत्पते ॥ ५६ ॥

हे पापरहित ! इस पुत्रसे तुम्हारी अचल कीर्त्तिहुई व्यासजी बोले कि हे देवेश ! क्या करूं मेरा शोक नहीं जाताहै ॥ ५६ ॥

अतृप्तेलोचनेमेद्यपुत्रदर्शनलालसे ॥

महादेव उवाच ॥

छायांद्रक्ष्यसिपुत्रस्यपार्श्वस्थांसुमनोहराम् ॥५७॥

पुत्र दर्शनकी लालसा से अब तक मेरे नेत्र तृप्त नहीं हुयेहैं शिवजी बोले अच्छा तुम अपने निकट पुत्रकी छाया उसी मनोहर आकृति युक्त को देखोगे ॥ ५७ ॥

तांवीक्ष्यमुनिशार्दूल शोकंजहिपरंतप ॥

सूत उवाच ॥

तदाददर्शव्यासस्तुछायांपुत्रस्यसुप्रभाम् ॥ ५८ ॥

हे मुनिशार्दूल, परन्तप ! उसको देखकर तुम शोक का त्यागनकरो। सूतजी बोले तब व्यासजी पुत्रकी सुप्रभावाली छाया को देखने लगे ॥ ५८ ॥

दत्वावरंहरस्तस्मै तत्रैवान्तरधीयत ॥

अन्तर्हितेमहादेवे व्यासःस्वाश्रममभ्यगात् ॥५९॥

इसप्रकार वर दे करिकै शिवजी अन्तर्धान होजाते भये और महादेवजी के अन्तर्धान होनेपर व्यासजी अपने आश्रम में आये ॥ ५६ ॥

शुकस्यविरहेणापि तप्तःपरमदुःखितः ॥

ऋषय ऊचुः ॥

शुकस्यपरमांसिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः ॥ ६० ॥